इतिहास की करवटें

शिव सागर मिश्र

अनुक्रम

इतिहास की करवटें

रेडियो रूपक

रेडियो रूपक

रेडियो रूपक रेडियो प्रसारण की अपनी विशिष्ट विधा है। वैसे तो रेडियो से विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है जैसे, नाटक, संगीत, वार्ता, कहानी, समाचार, समाचार-दर्शन, समाचार-विश्लेषण, रेडियो-रिपोर्ट आदि, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाए तो रेडियो रूपक को छोड, अन्य सभी विधाओं का उपयोग रेडियो के बाहर भी सामान्यतः हुआ करता है। वस्तुतः वार्ता का प्रकाशन लेख, निबंध के रूप में पत्र-पत्रिकाओं में हुआ करता है। संगीत को समाज ने महत्त्वपूर्ण स्थान दे रखा है। रेडियो के आविष्कार और उपयोग से बहुत पहले संगीत-सभाओं का आयोजन होता रहा है। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का इतिहास भी पुराना है।

विचित्रता तो यह है कि समाचार-पत्रों का प्रचार करने के लिए ही 1921 में संयुक्त राज्य अमेरिका में रेडियो की स्थापना की गई थी। जब रेडियो से भी समाचार प्रमुखता के साथ प्रसारित होने लगे और श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी, तब समाचार-पत्रों ने रेडियो माध्यम का ही विरोध करना शुरू कर दिया। खैरियत हुई कि रेडियो जैसे सशक्त माध्यम की महत्ता जनता ने स्वीकार कर ली थी। इसलिए समाचार-पत्रों का विरोध सफल नहीं हो पाया। नाटक का अपना अलग इतिहास और विभिन्न क्षेत्रों में अपनी-अपनी परम्पराएं है। प्राचीन काल से नाटकों का मचन होता आया है।

रेडियो रूपक की विधा ही एक ऐसी विधा है, जिसे अब तक रेडियो प्रसारण के अतिरिक्त और कही भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही हुआ है। कहा जा सकता है कि रेडियो प्रसारण के अन्य कार्यक्रमों को समाज और साहित्य ने अलग अस्तित्व के रूप में स्वीकार कर लिया है, लेकिन रेडियो रूपकों को अभी तक लिखित साहित्य के रूप में मान्यता नहीं मिल पाई है।

इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि रेडियो रूपक के नियोजन और प्रस्तुतीकरण में प्रसारण माध्यम की वैज्ञानिक उपलब्धियों और अन्य सबद्ध साधनों का समायोजन प्रायः आवश्यक रूप से होता है। उदाहरण के लिए, किसी घटना का ध्वनि-अंकन, टेप रिकार्डिंग या किसी व्यक्ति का साक्ष्य या समाज और साहित्य में मान्यता प्राप्त गण्यमान्य व्यक्तियों के वक्तव्य का ध्वनि-अंकन, अधिकांश रूपक कार्य-क्रमों में सुनियोजित ढग से सम्मिलित किए जाते हैं। चूंकि ध्वनि-प्रभाव का मोन्ताज और ध्वनि-अंकित वक्तव्य आदि ज्यों के त्यों लिपिबद्ध नहीं किए जा सकते, इसलिए रूपक कार्यक्रम को यथावत् पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कर पाना व्यावहारिक नहीं हो पाता। इन ध्वनि-प्रभावों या मोन्ताज (मिला-जुला ध्वनि-प्रभाव) में कोई अर्थ नहीं होता, इनमें होता है भाव, वातावरण की अनुगूंज या मात्र ध्वनि!

पाश्चात्य रेडियो विशेषज्ञों (फील्डन) आदि के अनुसार रेडियो रूपक वह कार्यक्रम है जिसमें किसी विषय को प्रतिपादित करने के लिए रेडियो वार्ता, संगीत, नाटक, आंखों देखा हाल या लिखित दस्तावेज आदि के संपादित अंशों का उद्देश्यपूर्ण समायोजन प्रस्तुत किया जाए। कुछ हद तक यह परिभाषा सही है। आमतौर पर रूपक में साक्ष्य जो कि वार्ता की एक शैली है, संस्मरण, संगीत और नाटक के अंश समाहित किए जाते है।

अंग्रेजी विश्वकोश (इनसाइक्लोपीडिया) में रूपक के लिए अंग्रेजी शब्द 'फीचर' का प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी के शब्द 'फीचर' का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। चित्रपट के संदर्भ में 'फीचर-फिल्म' कथायुक्त फिल्म है, जिसकी लम्बाई 3000 फुट से अधिक होनी चाहिए और उसकी अवधि कम से कम लगभग 34 मिनट हो। किसी भी सिनेमा कार्यक्रम में 'फीचर फिल्म' को प्रमुख स्थान दिया गया है। गरज कि चल-चित्र के संदर्भ में कथा 'फीचर' का अनिवार्य अंग है। पत्रकारिता, रेडियो और दूर-दर्शन के संदर्भ में अंग्रेजी शब्द 'फीचर' का सामान्यतः अर्थ होता है, कथा-विहीन लेख या निबंध, या डाक्यू-मेन्टरी।

आकाशवाणी मे अंग्रेजी 'फीचर' शब्द का हिन्दी पर्याय 'रूपक' का प्रचलन कब और क्यों हुआ, इसका स्पष्ट विवरण कहीं मिलता नहीं है। मैं सन् 1948 से रूपक कार्यक्रम का प्रसारण देख-सुन रहा हूं। हिन्दी

में रूपक शब्द का अर्थ है, विशिष्टता, रूप, आकार, महत्त्वपूर्ण, समान, अनुरूप, प्रति-कृति आदि। यह एक अर्थालंकार भी है, जहां साधर्म्य के कारण उपमेय और उपमान का आरोपण किया जाए।

मेरे विचार में, रेडियो अथवा दूर-दर्शन में रूपक शब्द का प्रयोग प्रति-कृति के रूप में ही हुआ है। कारण यह है कि इस कार्यक्रम में किसी वस्तु या विषय की प्रामाणिक और अधिकृत प्रति-कृति प्रतिष्ठापित की जाती है। इस कार्यक्रम की पहली शर्त है प्रामाणिकता और वास्तविकता। इसीलिए यह तथ्यपरक विधा है। प्रामाणिकता और वास्तविकता इसकी नींव ही नहीं, इसका ढांचा भी है। जाहिर है, ऐसी स्थिति में इसके नीरस और अनाकर्षक होने का खतरा आ उपस्थित होता है। तब आवश्यक हो जाता है कि इसकी शैली को मनोरंजक बनाया जाए। इसमें नाटकीयता लाई जाए। निदान, प्रामाणिकता और वास्तविकता से परिपूर्ण कार्यक्रम में वाचक के माध्यम से कभी-कभी रहस्यमयता, अनिश्चय और असमजस की नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर देनी पड़ती है। वातावरण को सजीव और आकर्षक बनाने के लिए यह नाटकीय प्रयोग उपयोगी है। साहित्य की किसी मौलिक रचना में भी किसी विषय या वस्तु का ही प्रतिपादन किया जाता है। रेडियो के रूपक कार्यक्रम और साहित्यिक कार्यक्रम में अंतर यह है कि रूपक कार्यक्रम तथ्य पर आधारित होता है, इसलिए इसे प्रामाणिक और अधिकृत होना चाहिए, जबकि साहित्य में सत्य का प्रतिपादन किया जाता है। इस दृष्टि से रूपक में नितांत सामयिकता है, किन्तु साहित्य में सामयिक सत्य के साथ-साथ शाश्वत सत्य भी हुआ करता है।

विश्वकोश में, रेडियो रूपक अथवा दूर-दर्शन-रूपक की जो परिभाषा दी गई है, वह भारत की आकाशवाणी के संदर्भ में पूरी तरह व्यावहारिक और सही प्रतीत नहीं होती। कारण यह है कि भारत अपने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत के लिए विख्यात है। यह बहुत ही प्राचीन देश है। इसकी अपनी विशेष परंपराएं है। यहा का जन-मन अपनी सांस्कृतिक आध्यात्मिक परम्पराओं से उत्प्रेरित और उद्वेलित होता रहता है। पाश्चात्य आधुनिक सभ्यता की हवा निस्सदेह भारत के बुद्धिजीवियों, शिक्षितों और अर्द्ध-शिक्षितों को उत्प्रेरित करती रहती है, किंतु यहां की 80 प्रतिशत जनता अभी गांव में ही निवास करती है और गांव की हवा मे लोक-संस्कृति का प्रधान्य है।

रूपक कार्यक्रम का नियोजन करते समय हमें ध्यान रखना होगा कि हमारे श्रोता कौन हैं, उनकी रुचि क्या है और वे हमारे इस रूपक कार्यक्रम को किस रूप में स्वीकार करेंगे।

महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि भारत वर्षों तक पराधीन था। स्वाधीन होते ही इसे भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके सामने मुख्य समस्या थी, और अभी भी है, कि देश का आर्थिक पुनर्गठन किया जाए। आर्थिक पुनर्गठन अथवा विकास कार्य की संपन्नता, प्रजातांत्रिक पद्धति में, जनता के सक्रिय सहयोग पर ही निर्भर करती है। जनता का सक्रिय सहयोग सुलभ कराने के लिए जन-मन को संस्कारित करना पड़ेगा। उन्हें बताना पड़ेगा कि वे कौन थे, क्या हैं और उन्हें क्या करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उनमें राष्ट्रीयता, देश की स्वस्थ परंपरा और अपनी सांस्कृतिक विरासत के यथार्थ की चेतना जागृत की जाए। जाहिर है, इसके लिए आवश्यकतानुसार कथा और संगीत का सहारा भी लेना पड़ेगा।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रूपकों के विभिन्न विषयों और शीर्षकों का विश्लेषण करने से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि यह कार्यक्रम एक खास उद्देश्य से प्रसारित किया जाता रहा है। यह उद्देश्य है जन-मन को प्रशिक्षित करना, उनमें राष्ट्रीय गरिमा उत्पन्न करना और राष्ट्र-निर्माण के कार्य में उनका सक्रिय सहयोग लेना। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस कार्यक्रम के माध्यम से रचनात्मक जन-मत तैयार किया जाता है। हम जिसका सक्रिय सहयोग लेना चाहते हैं, उससे उसी की भाषा में और उसी की रुचि के अनुरूप विभिन्न चित्र चित्रित करके हम उसके मन को छू सकेंगे।

भारत के अधिकांश जन अशिक्षित हैं, किन्तु वे कथा-कहानियों के जरिए अपने समाज और परंपरा से जुड़े हुए हैं। यह वास्तविकता है जिसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए उनको उत्प्रेरित करने के लिए हमें उनकी रुचि के अनुरूप कथा, वार्ता, लोक-नृत्य, संगीत आदि से युक्त कार्यक्रम प्रस्तुत करना होगा अन्यथा हमारा प्रयत्न विफल हो जाएगा।

हम श्रोता तक कोई बात पहुंचाना चाहते हैं। यह जरूरी नहीं कि श्रोता हमारी बात सुनने या उसे स्वीकार करने को तैयार ही हो जाए। सो हम क्या करें? किस प्रकार अपना उद्देश्य सफल करें? यदि हम

अपनी बात या कोई तथ्य श्रोता तक पहुंचाने में सफल नहीं हो सकेंगे तो यह प्रसारण-माध्यम ही निष्प्रयोजन सिद्ध हो जाएगा। इसका उपाय यह है कि हमें विक्रय-कला का सहारा लेना पड़ेगा। अपने तथ्य और विषय को श्रोता की रुचि के अनुरूप संवार कर प्रस्तुत करना पड़ेगा।

यदि हम यह मानकर चलें कि रूपक-कार्यक्रम में किसी विषय या वस्तु की प्रति-कृति का चित्रण किया जाता है, तो स्वभावतः यह मानना पड़ेगा कि उसके लेख प्रस्तुत करते समय लेखक में, सृजनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि रूपक-कार्यक्रम एक मौलिक रचना है। चूंकि यह कार्यक्रम तथ्यों पर आधारित होता है, इसलिए इसमें ऐसी आधारभूत सामग्री का उपयोग करना होगा जो अधिक ठोस और प्रामाणिक हो। स्पष्ट ही इसके लेखक और प्रस्तुत-कर्ता को सृजनात्मक-प्रतिभा के साथ-साथ विश्लेपणात्मक और तुलनात्मक ज्ञान का भी परिचय देना पड़ेगा। उसे प्रतिपाद्य विषय की पूरी जानकारी रखनी होगी।

रूपक-कार्यक्रम के लिए आधार-सामग्री दो स्रोतों से प्राप्त की जाती है। एक स्रोत है, लिखित दस्तावेजों, जैसे इतिहास, संस्मरण, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, निबंध आदि और दूसरा स्रोत है, सामयिक यथार्थ जो साक्ष्य, संस्मरण, विचार, परिवेश आदि की रिकार्डिंग करके प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों स्रोतों से प्राप्त आधारभूत सामग्री का संपादित रूप ही वस्तुतः रूपक-कार्यक्रम का शरीर हुआ करता है। शरीर मूर्तिवत् रह जाएगा, यदि रूपक लेखक में सृजनात्मक प्रतिभा और विश्लेपणात्मक शक्ति नहीं होगी। इन दोनों शक्तियों के संयोग से ही लेखक, रूपक-कार्यक्रम में, वाचक अथवा नाटकीय अंशों के माध्यम से प्राप्य का संचार करता है।

मैंने ऊपर कहा है कि रूपक-कार्यक्रम रेडियो की अपनी खास विधा है। रेडियो अथवा दूरदर्शन के कार्यक्रम दृश्य और श्रव्य काव्य के अंतर्गत आते हैं। इन्हें सुनने और देखने वाले शिक्षित भी हो सकते हैं और अशिक्षित भी। एक अशिक्षित दर्शक और श्रोता भी दूरदर्शन या रेडियो पर किसी विषय को देखकर या सुनकर उसे अपनी क्षमता भर समझ सकता है। यह देखना और सुनना मंच अथवा दूरदर्शन अथवा रेडियो के सहारे ही संभव है। यही कारण है कि अब तक रेडियो की

इस रूपक-विधा का उपयोग पत्र-पत्रिकाओं अथवा साहित्य में नाममात्र के लिए ही हो पाया है। इसका यह अर्थ नहीं कि यह विधा महत्त्वपूर्ण अथवा प्रभावशाली नहीं है। दुर्गा पूजा हो या दशहरा, दीवाली हो या होली, गुरु का जन्मदिन हो या विदेशी अतिथि का आगमन, स्वाधीनता-दिवस हो या गणतंत्र-दिवस, दूरदर्शन अथवा रेडियो ऐसे अवसरों पर निश्चित रूप से रूपक-कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

प्रसारण की इतनी महत्त्वपूर्ण विधा होते हुए भी, भारत में, आकाशवाणी अथवा दूर-दर्शन ने रूपक-कार्यक्रम को विकसित और सक्षम बनाने के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किया है। दुखदायी बात यह है कि इन संगठनों से इस विधा का सैद्धांतिक अध्ययन-विवेचन करने तक का प्रयत्न नहीं किया है। 59-60 साल से संसार में रेडियो प्रसारण का काम चल रहा है। रेडियो का उपयोग सरकार और प्रशासन ने अपने लाभ के लिए जमकर किया है, लेकिन इस माध्यम के समुचित विकास की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, उतना ध्यान नहीं दिया गया।

रूपक-कार्यक्रम के अंतर्गत विषय का चयन और विषय के अनुरूप सामग्री-संकलन का काम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक विषय पर रूपक-कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। विषय का निर्धारण वही कर सकता है जो लेखक और प्रस्तुतकर्ता के अतिरिक्त इस विधा का विशेषज्ञ भी हो, किन्तु होता यह है कि लेखक और प्रस्तुतकर्ता पर विषय ऊपर से लाद दिया जाता है। सामग्री-संकलन के लिए लेखक अथवा प्रस्तुतकर्ता को केवल लिखित सामग्री की ही आवश्यकता नहीं होती, बल्कि उसे दूर-दराज की यात्रा करके विषय के परिवेश के अनुरूप स्थानीय सामग्री का ध्वनि-अंकन भी करना पड़ता है। इस कार्य को संपन्न करने के लिए टेप-रिकार्डिंग, परिवहन और समुचित समय की नितांत आवश्यकता है, किन्तु यहां 'भोज के समय कोहरा रोपने' का प्रयत्न किया जाता है।

स्वतंत्रता के बाद आकाशवाणी द्वारा प्रस्तुत विभिन्न विधाओं को विकसित और सुगठित करने का प्रयास किया गया है। आकाशवाणी के बहुत-से नये-नये केन्द्र स्थापित किए गए हैं, किन्तु रूपक-विधा को विकसित और समर्थ करने के लिए कोई भी प्रभावशाली कदम अब तक नहीं उठाया गया है। आकाशवाणी के अधिकांश केन्द्रों में अब तक रूपक-एकांश तक नहीं है।

आकाशवाणी—एक अनुभव

आकाशवाणी—एक अनुभव

बात सन् 1948 की है। राजनीति शास्त्र में एम० ए० की पढ़ाई पूरी करने के लिए मैं बनारस से अपने प्रदेश की राजधानी पटना आया। परिस्थितियां प्रतिकूल थीं, इसलिए पढ़ाई पूरी करने के साथ-साथ, जीविकोपार्जन की चिंता भी गले पड़ गई। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में काम तो मिल गया, लेकिन वहां न पैसे थे, न प्रतिष्ठा। इससे एक ही लाभ हुआ। बिहार के विख्यात कवि, श्री रामदयाल पांडेय से भेंट हो गई जिन्होंने, श्री राधाकृष्ण प्रसाद के नाम पत्र देकर, मुझे पटना स्थित आकाशवाणी का द्वार खटखटाने की प्रेरणा दी।

श्री राधाकृष्ण प्रसाद बिहार के कथाकारों में अपना स्थान बनाने लगे थे कि तभी उनकी नियुक्ति, बहैसियत प्रोग्राम असिस्टेण्ट के, आकाशवाणी, पटना में हो गई। अपने नाम का चिट उनके पास भिजवाकर मैं छज्जूबाग स्थित आकाशवाणी कार्यालय के प्रतीक्षालय में बैठ गया। कुछ ही देर बाद, श्याम-वर्ण के नाटे कद वाले, किंचित स्थूल-काय, राधाकृष्णजी मेरे सामने आकर खड़े हो गए। उनके हाथ में पड़ा हुआ अपना चिट मैंने पहचान लिया। इसलिए उनके आ उपस्थित होते ही मैं उठ खड़ा हुआ। सहानुभूति और निराशा मिश्रित स्वर में वे बोले—

"आपको पांडे जी ने भेजा है?···मैं मजबूर हूं। अभी कोई जगह खाली नहीं है। ड्रामा-वॉयस के लिए परीक्षा रहती होती है। इस तरह का ऑडीशन-टेस्ट भी डेढ़-दो महीने बाद होगा।···यदि आप लिखते-पढ़ते हों तो कुछ नाटक, कहानी दे जाइएगा। देखेंगे कि क्या किया जा सकता है।"

उनकी बातचीत का ढंग स्नेहपूर्ण था। मैंने आदरपूर्वक जवाब दिया—

"कोई बात नहीं। आपने दिलचस्पी ली, यही बड़ी बात है। कृपया

मेरा नाम-पता नोट कर लीजिए—शिवसागर मिश्र, कम्यून, मछुआ टोली, पटना। वैसे मैं भी आपसे सपर्क बनाए रखूंगा।"

मेरी बात सुनते ही राधाकृष्णजी अप्रत्याशित रूप से खिल उठे। उनका दाहिना हाथ अचानक ही मेरे कंधे पर आ पड़ा। उनकी आंखें चमक उठीं और वह मुस्कराते हुए बोले—

"थोड़ी देर रुक जाइए। मैं आपको अपने सहयोगो से मिलवाता हूं।"

मैं समझ नही पाया कि जो व्यक्ति क्षण-भर पहले ही निराश होकर अपनी असमर्थता प्रकट कर चुका था, उसे अचानक क्या हो गया कि वह अनायास ही इतना आशावान् हो उठा और अपने सहयोगी को बुलाने के लिए दौड पडा। मैं इसी तर्क-वितर्क में पडा हुआ था कि राधाकृष्णजी अपने सहयोगी के साथ तुरंत ही आ पहुंचे। परिचय होने पर मालूम हुआ कि वे लुवा साहब हैं। श्री लुवा ने मुझसे मेरा नाम पूछा और यह भी जानना चाहा कि मैं संप्रति क्या काम करता हूं। मेरा जवाब सुनते ही वह सज्जन भी लगभग उछल-से पड़े और मेरी बांह पकड़कर उस भवन के बिलकुल दूसरी तरफ वाले बरामदे में ले गए। उस बरामदे के दाहिने किनारे छोटा-सा एक कमरा था, जिसमें दीवार से लगी 'टिक-ऊड' की लगभग डेढ हाथ चौड़ी मेज थी। मेज के ऊपर माइक्रोफोन रखा हुआ था। सामने शीशे की लगभग दो हाथ चौड़ी और पांच हाथ लंबी दीवार थी। शीशे के उस पार एक कमरा नजर आ रहा था जो बहुत ही खूबसूरत था। कमरे की सफेद दीवारों में असंख्य छिद्र बने हुए थे। उस कमरे में दीवार के सहारे रखे रैक पर तानपुरा, सितार जैसे अनेक वाद्य-यंत्र करीने से सजे हुए थे। श्री लुवा ने मुझे शीशे की दीवार के ऊपर लगे आठ-दस फुट लंबे, किंतु गोलाई लिए हुए लैंप की ओर इशारा करके कहा—

"जब इसमें लाल रोशनी आ जाए और मैं आपसे पढने को कहूं, तब आप इस कागज पर अंकित उद्घोषणा कृपया पढ दीजिएगा। तब तक दो-तीन बार यह उद्घोषणा आप ठीक से देख जाइए।"

उस समय मेरी स्थिति विचित्र हो गई थी। मेरे लिए सब कुछ रहस्यमय लग रहा था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। इससे पहले मुझे न तो कभी किसी रेडियो स्टेशन में जाने का मौका मिला था और न ही मैंने ध्यानपूर्वक कभी रेडियो से प्रसारित

होने वाले किसी कार्यक्रम को सुना था। इसलिए कई मिनट तक मैं असमंजस की स्थिति में बैठा रह गया। न मालूम कब तक इसी प्रकार बैठा रहा कि छत की तरफ से आवाज आई, "मिश्र जी, यदि आप तैयार हों, तो पढ़ना शुरू कर दीजिए।" मैंने चौंककर ऊपर देखा, छलनी की जाली की तरह कोई गोल चीज छत में लगी थी और यह आवाज़ उसी से छनकर आ रही थी। तब तक मैं उस कागज को, जिसे मुझे पढ़ना था, एक बार भी देख नहीं पाया था।

मैंने जल्दी से उस कागज पर नजर डाली औरपढ़ना शुरू कर दिया। पूरा पृष्ठ पढ़ने में मुझे लगभग डेढ़ मिनट लगे होंगे। उसके बाद आदेश की प्रतीक्षा में मैं बैठा ही था कि लुंबा जी खुद वहां आ पहुंचे और आग्रह-पूर्वक बोले—

"इसमें कई कार्यक्रमों के संबंध में अलग-अलग तरह की उद्घोषणाएं हैं। कृपा करके धीरे-धीरे और हर उद्घोषणा के बाद थोड़ा रुककर—पाज देकर—फिर से पढ़िए। जब लाल रोशनी जल जाए तब शुरू कीजिए।" यह कहकर लुंबा जी उस छोटी-सी कोठरी का दरवाजा बंद करके बाहर चले गए। बाद में मुझे मालूम हुआ कि उस तरह की कोठरी को 'एनाउंसर-बूथ' कहा जाता है।

विस्तार में न जाकर यहां इतना ही कह देना काफी है कि मेरी आवाज सुनकर राधाकृष्णजी और श्री लुंबा चकित रह गए थे। रेडियो वाले अच्छी, गंभीर खरजवाली मोटी आवाज की तलाश में रहते हैं। यदि वक्ता का उच्चारण शुद्ध हो और उसकी आवाज में लचीलापन हो, फिर तो सोने में सुगंध। बिहार में इसकी बहुत कमी है। मुझे उसी दिन तदर्थ आधार पर 'एनाउंसर' की नौकरी मिल गई। श्री लुंबा ने अपने दूसरे सहयोगियों से मेरा यह कहकर परिचय कराया कि वे हिन्दी का 'नोबी क्लार्क' ढूंढ निकालने में सफल हुए हैं। मुझे जानकारी दी गई कि नोबी क्लार्क दिल्ली से अंग्रेजी में समाचार प्रसारित करने वाला सर्वश्रेष्ठ 'न्यूज रीडर' है। बाद में मुझे नोबी क्लार्क के साथ काम करने और यात्रा करने का मौका भी मिला था। इस तरह मैंने बिना किसी पूर्व योजना के ऑल इंडिया रेडियो में प्रवेश किया।

पटना से दिल्ली जाने का किस्सा भी दिलचस्प है। ऑल इंडिया रेडियो के पटना केंद्र में अंशकालिक रूप से काम करके मुझे तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़े। एनाउंसमेन्ट करने के साथ, कभी योजना संबंधी

विषयों पर कविताएं लिखनी पड़ती थीं, तो कभी छोटे-छोटे रूपक। कहानियों और रेडियो रिपोर्ट से संबद्ध कार्यक्रम भी मैंने प्रस्तुत किए। नाटकों और रूपकों में अभिनेता के रूप में भी हिस्सा लिया। पटना के गांधी मैदान में पहले गणतंत्र समारोह के अवसर पर आंखों देखा हाल (रनिंग कमेंट्री) सुनाने का भी अवसर मिला। मेरे साथ दूसरे कमेंटेटर थे, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक और पत्रकार स्व० रामवृक्ष बेनीपुरी। इतने बड़े लेखक और पत्रकार का सहयोगी बनने के बाद मुझे लगा कि प्रसारण की दुनिया में मैं अपना स्थान बना सकता हूं। मेरा अनुमान निराधार नहीं था। बाद में ऑल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नियुक्ति मिलने पर, बाईस साल की अवधि में मुझे अनेकों बार राष्ट्रीय महत्त्व के अवसरों पर आंखों देखा हाल सुनाने का सम्मानपूर्वक अवसर मिला।

हमारे देश की कठिनाई यह रही है कि जिस विदेशी हुकूमत के हाथों से हमने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली, उस हुकूमत और उसके तंत्र को हमने आदर्श मान लिया। हम अपनी हीन-भावना से कभी मुक्त नहीं हो सके। इसका कारण शायद यह है कि हमने बहुत सस्ते में आजादी पा ली और जब हमारे हुक्मरान यहां से जाने लगे, तब उन्हें खुश करने के लिए हमने उनका ही ताम-झाम और झूल-आडंबर ओढ़ लिया। हमने जितने भी नये संगठन बनाए, सभी के साथ 'सेवा' शब्द संबद्ध कर दिया, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, परिवहन सेवा, समाचार सेवा, आदि-आदि। लेकिन, सेवा की भावना हर संगठन में गौण ही बनी रही, उनमें भी जिन्हें पूर्णतया सेवा के लिए संगठित किया गया था। इसका कारण यह हुआ कि हमने ऐसा तंत्र अपना लिया जो शंका, अविश्वास, शासन और शोषण का दो सौ वर्षों से प्रतीक बन चुका था। निदान 'सेवा' शब्द कभी सार्थक नहीं हो सका।

आकाशवाणी भी एक सेवा-संगठन है। इसका उद्देश्य है—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। यह मनोरंजन के माध्यम से सूचना और शिक्षा का प्रचार-प्रसार करती है। यही कारण है कि समाचार और संगीत को आकाशवाणी में प्रमुख स्थान प्राप्त है। लेकिन, इसे आरंभ से ही सेवा-संगठन के रूप में नहीं, बल्कि सचिवालय के रूप में संचालित किया गया।

कथनी और करनी का अंतर भारत के चरित्र की विशेषता रही है।

हमारे नेताओं और विचारकों ने तो यह अवश्य सोचा कि स्वाधीन भारत का तंत्र आपसी सद्भाव, समभाव, विश्वास, निष्ठा और ईमानदारी पर आधारित होकर ही कारगर सिद्ध हो सकता है, लेकिन इस विचार को कार्यरूप देने वाले तत्त्वों ने अपने प्रशिक्षण और परंपरा के अनुरूप अंग्रेजों की शंकालु और अविश्वासपूर्ण भेद-नीति का ही सहारा लिया। आकाशवाणी सेवा की बजाय सचिवालय पद्धति पर चल पडी। जहां सर्जनात्मक प्रतिभा और प्रवृत्ति को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए था, वहां प्रशासनिक नियम, उपनियम, अधिनियम में निपुण लोगों का वर्चस्व स्थापित हो गया। वार्ता, नाटक, रूपक, संगीत, समाचार आदि से संबद्ध सदस्य इस संगठन में तीसरे दर्जे के नागरिक बनकर विरोध-अवरोध के बीच से अपने-अपने कार्यक्रम को किसी प्रकार स्वरूप देने में भी कठिनाई का अनुभव करने लगे।

बाद में चलकर, सूचना एवं प्रसारण मंत्री, श्री केसकर, के कार्य-काल में, लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों और संगीतज्ञों जैसे, सुमित्रा नंदन पंत, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, उदय-शंकर भट्ट, इलाचंद्र जोशी, ठाकुर जयदेव सिंह आदि को आकाशवाणी में सलाहकार और प्रोड्यूसर बनाकर लाया गया। इन लोगों के काम संभालते ही लगा कि आकाशवाणी के कार्यक्रम में उल्लेखनीय और अपूर्व सुधार आ जाएगा। निस्संदेह, इन विख्यात व्यक्तियों ने पूरी निष्ठा, लगन और ईमानदारी से काम शुरू भी कर दिया। लेकिन, खेद का विषय है ये लोग अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हो सके।

यदि गहराई में जाकर इन सर्जनात्मक कलाकारों की विफलता की जांच-पड़ताल की जाए तो मालूम होगा कि सर्जनात्मक क्रिया-कलापों के अनुरूप न तो वातावरण था, और न बनने दिया गया। जिन महा-जनों के नाम का उल्लेख मैंने ऊपर किया है, वे अपने-अपने क्षेत्र, विषयों और विधाओं के जाने-माने व्यक्ति थे। समाज में उनका आदर था। जन-मानस में उनकी छवि नायकों की-सी अंकित थी। उन्हें लोक-प्रियता भी प्राप्त थी। प्रशासकों की हीन-भावना को यह सह्य नहीं हो सका। आकाशवाणी के दफ्तरों में इन सज्जनों को मेज, कुर्सी दे दी गई थी। इन लोगों के पास फाइलें आने लगीं और ये उन फाइलों पर अपने प्रस्ताव और टिप्पणियां अंकित करने लगे। लेकिन, उन प्रस्तावों और टिप्पणियों की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति अंकित करने का एकाधिकार

प्रशासकों के हाथों में सुरक्षित रहा। ये प्रशासक निश्चित रूप से पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो ये मात्र साक्षर थे, ज्ञानी, कलाकार लेखक या संगीतकार नहीं। इनके पास प्रशासनिक पद्धति और प्रक्रिया की पूरी जानकारी थी, किन्तु ये भारतीय वाङ्मय, नृत्य, संगीत, वाद्य का मात्र सतही ज्ञान रखते थे। ये लोग पक्की नौकरी वाले थे, जिनका चयन संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से होता था। इस आयोग में डिग्री (विशेषकर अंग्रेजी की) देखी जाती है, प्रतिभा नहीं।

दुर्भाग्य की बात तो यह हुई कि इस तरह के प्रशासकों में जो भाषा-विद्, साहित्यकार, संगीतज्ञ या कलाधर्मिता के उपासक पैठ पा सके, वे लोग भी कालान्तर में मात्र प्रशासक बनने में ही अपना कल्याण देखने लगे। इन्हें नौकरी करनी थी, सो नौकरी करते रहे। मूर्धन्य साहित्य-कार और संगीतज्ञों में से अनेक मैदान छोड़कर भाग निकले, क्योंकि उनका दम आकाशवाणी के वातावरण में घुटने लगा।

जिन दिनों मैं ऑल इंडिया रेडियो के पटना केन्द्र में काम करने लग गया था, उन दिनों केन्द्र-निदेशक के पद पर मढेंकर नियुक्त थे। मढेंकर अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता और मराठी के जाने-माने कवि थे। वे एक निष्ठावान और ईमानदार अधिकारी थे। वे चाहते थे कि ऑल इंडिया रेडियो, पटना के कार्यक्रम सुंदर, सजीव और मनोरंजक हों। दुर्भाग्य से उनका जन-संपर्क-पक्ष कमजोर था। वे स्वयं अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता होने के बावजूद मराठी साहित्य के सर्जनशील कवि थे, इसलिए भारतीय भाषाओं में उनकी गहरी रुचि थी। उनकी रुचि व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षा में नहीं, आकाशवाणी के कार्यक्रमों को सुधारने में थी। इससे उनके चंद प्रमुख सहयोगी जो गप्प, गुटबंदी और शराब को जीवन की सफलता का सोपान समझते थे, उनसे नाराज रहने लगे। उनके ये सहयोगी आचार-विचार में अंग्रेजियत से भरे हुए थे। आकाशवाणी को वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बनाना चाहते थे। मढेंकर उनकी राह में बाधक बन गए। निदान विरोध शुरू हो गया।

मढेंकर के विरुद्ध स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में टिप्पणियां छपने लगीं। पत्र-पत्रिकाओं के कुछ तथाकथित संपादक, लेखक, कवि और पत्रकार मढेंकर के सहयोगियों के आभारी थे, क्योंकि उनके माध्यम से उन्हें कार्यक्रम मिला करता था।

ही बाद में चलकर डॉ० केसकर की नीति के सक्रिय विरोधी बन बैठे। डॉ० केसकर चाहते थे कि वार्ता, नाटक, रूपक, संगीत आदि के कार्यक्रम पूरी तरह इन विधाओं के जानकारों के हाथों में सौंप दिए जाएं, और इन नीतियों के परिपालन के निमित्त प्रोड्यूसरों का एक स्वतंत्र और सुव्यवस्थित संवर्ग बना दिया जाए। डॉ० केसकर की यह नीति देखकर प्रशासकों को लगा कि उनके पांव के नीचे की धरती खिसक जाएगी। ध्यान देने की बात है कि मर्ढेकर का जिन लोगों ने विरोध किया था, उन्ही लोगों में से एक सज्जन ने बाद में चलकर छोटा-मोटा आंदोलन ही चला दिया। उनके रिश्तेदार बहुत बड़े धनपति थे, इसलिए उक्त अधिकारी इस्तीफा देकर अपने रिश्तेदारों के कारोबार में हिस्सेदार बन गए और वहीं बैठे-बैठे वर्षों तक आकाशवाणी के भीतर स्टाफ आर्टिस्टों और नियमित सरकारी अधिकारियों के बीच विरोध की आग मे घी डालते रहे।

लगभग दो वर्षों तक मैंने 'एनाउंसर' का काम किया और तभी मुझे स्कूल में पठित इस कविता का कि 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होहि सुजान' का अर्थ मालूम हुआ। मैने कविताएं लिखीं, कहानियां प्रसारित की, रूपक के आलेख तैयार किए, लेकिन कभी किसी ने मुझे इन विधाओं के बारे विधिवत् प्रशिक्षण में नही दिया। आकाशवाणी में इसकी समुचित व्यवस्था भी तब नही थी। आज भी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नही आया है। एक छोटे-से स्टाफ स्कूल में पेंट, कमीज और टाई दिखाकर धोती, कुर्ता पहनने की शिक्षा दी जाती है। आकाशवाणी से अधिकांश कार्यक्रम हिन्दी या भारतीय भाषाओं में होता है, लेकिन, अखिल भारतीय सेवा या एकता के नाम पर अंग्रेजी में प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस संगठन में मुख्यत: तीन कोटियों के कर्मचारी कार्यरत है। प्रथम कोटि के कर्मचारी है—नियमित सरकारी अधिकारी। इस कोटि के अंतर्गत ट्रांसमीशन एक्जीक्यूटिव, प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव (पहले प्रोग्राम असिस्टेन्ट भी होते थे) असिस्टेन्ट स्टेशन डायरेक्टर, स्टेशन डायरेक्टर, डिप्टी डायरेक्टर जनरल और डायरेक्टर जनरल आते हैं। दूसरी कोटि के अंतर्गत तकनीकी विशेषज्ञ आते हैं, जिनमें असिस्टेन्ट स्टेशन इंजीनियर, स्टेशन इंजीनियर, डिप्टी चीफ इंजीनियर और चीफ इंजीनियर आदि होते हैं। तृतीय कोटि के कर्मचारी वे है, जिन्हें श्रोता-

गण रेडियो पर सुना करते हैं या जो कुछ सुनने को मिलता है, उनके प्रस्तुतीकरण में सहायक होते है। इसी कोटि में एनाउंसर, न्यूज रीडर, प्रोड्यूसर, आलेख-लेखक, सयोजक आदि है। सगीत कार्यक्रम और नाटकों में बाहर के सुविख्यात संगीतज्ञों और अभिनेताओं, कलाकारों को भी आमंत्रित किया जाता है।

दुखद स्थिति यह है कि आकाशवाणी जैसे सांस्कृतिक सेवा-संगठन में पेशेवर कलाकारों, लेखकों, प्रसारकों, प्रोड्यूसरों को पद और पैसे की दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। इस संगठन का नियंत्रण पूरी तरह नियमित सरकारी अधिकारियों के हाथ में है जो आकाशवाणी की प्रसारण-विधाओं का सतही ज्ञान ही रखते है।

आकाशवाणी का समाचार विभाग ही एक ऐसा विभाग है, जहां पत्रकारिता से परिचित कर्मचारियों-अधिकारियों का संवर्ग विद्यमान है, और जो काफी हद तक अपने कार्य-संपादन मे स्वाधीन होते हैं। निस्सदेह, यहां का प्रशासनिक नियंत्रण भी प्रथम कोटि के नियमित सरकारी अधिकारियों के हाथ में रहता है।

ऐसे जड़-तंत्र के अंतर्गत सर्जनात्मक काम करने का अनुभव कटुता से पूर्ण ही हो सकता है। यहां इस प्रकार के अनुभव अंकित कर दिए जाएं तो संभव है कि आने वाली पीढ़ी अपनी दिशा सुनिश्चित करने में सहायता पा सके। अतीत को कलेजे से लगाकर नहीं रखा जा सकता, बल्कि अतीत के अनुभवों से मात्र शिक्षा ग्रहण की जा सकती है।

मैंने देखा कि पटने में आकाशवाणी की इस तृतीय कोटि के कर्मचारियों को चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों से भी कुछ मायनो मे बदतर समझा जाता है। चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी गिलास में पानी भरकर देने से इनकार कर सकता है। लेकिन कोई नियमित अथवा नैमित्तिक एनाउन्सर या कम्पियर अथवा अभिनेता (ड्रामा बॉयस) अपने अधिकारियों को पानी ही नहीं पिलाता था, बल्कि उनके जूठे बर्तन भी उठाता था। तृतीय कोटि के कर्मचारियों को आकाशवाणी में 'स्टाफ आर्टिस्ट' कहा जाता है। यदि आज मनु भगवान होते तो इस संगठन के कर्मचारियों का वर्गीकरण करते समय प्रथम कोटि के कर्मचारियों को ब्राह्मण का दर्जा देते, द्वितीय कोटि के कर्मचारियों को क्षत्रिय का और तृतीय कोटि के कर्मचारियों (स्टाफ आर्टिस्ट) को शूद्र का। जिस समय की मैं बात लिख रहा हूं, उस समय इस कोटि के कर्मचारियों का

वर्षों तक पंद्रह रोज, एक महीना, या तीन महीने के अनुबंध पर नियुक्ति-पत्र दिया जाता था। वर्षों तक काम करने के बाद, चंद चुने हुए लोगों को तीन वर्ष की अवधि का अनुबंध-पत्र दिया जाता था। इसकी कोई गारंटी नहीं थी कि तीन वर्ष तक अनुबंधित व्यक्ति को काम पर रखा ही जाएगा। उसे बिना कारण बताए, पंद्रह रोज की सूचना पर, निकाल बाहर किया जा सकता था।

मुझे यह अपमानजनक स्थिति असह्य लगी। स्वाधीन भारत में सर्जनात्मक प्रतिभा के धनी कलाकारों को जाति-भेद-नीति का दंश झेलना पड़े, यह भला क्योंकर बर्दाश्त किया जा सकता था ? मैं तो स्वाधीनता-आंदोलन के चक्कर में जेल से लौटा हुआ आदमी था। उस पर तुर्रा यह कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का स्नातक था। 'पत्तल उठाओ सभ्यता' के विरुद्ध मैंने तृतीय कोटि के कर्मचारियों—स्टाफ आर्टिस्टों और कैजुअल आर्टिस्टों का एक संगठन बना लिया। उन दिनों पटने से अंग्रेजी में एक पाक्षिक पत्रिका 'स्पार्क' प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के संपादक थे विश्वनाथ जी, जो बहुत बाद में चलकर देश के प्रथम राष्ट्रपति, डा० राजेन्द्र प्रसाद, के निजी सचिव बन गए थे। इन्हीं विश्वनाथ जी को इस संगठन का अध्यक्ष बनाया गया।

उक्त संगठन के बनते ही आकाशवाणी, पटना के अधिकारियों के कान खड़े हो गए। अब मुझे महीने-महीने भर के अनुबंध पर रखने की बजाय पंद्रह रोज के अनुबध पर रखा जाने लगा। प्रशासन की ओर से मेरे विरुद्ध सख्ती बरती जाने लगी। ट्रांसमीशन ड्यूटी के समय चाय तक पीने की मनाही कर दी गई। हम लोगों की ओर से भी समाचार-पत्रों में टीका-टिप्पणी प्रकाशित होने लगी। इससे तंग आकर तत्कालीन केन्द्र-निदेशक ने मुझे काम से हटा दिया और एनाउन्सर के रिक्त पद को विज्ञापित कर दिया।

मैंने भी आवेदन-पत्र दिया था, इसलिए ध्वनि-परीक्षा में मुझे बुला लिया गया। परीक्षा में मैं प्रथम आया। लेकिन नियुक्ति-पत्र दिया गया उस व्यक्ति को, जो द्वितीय स्थान पर आया था। इस अनियमितता के विरुद्ध मैंने आवाज उठाई। दिल्ली तक से पत्राचार शुरू कर दिया। इसी सिलसिले में मैं एक दिन आकाशवाणी के कार्यालय में पहुंचा तो देखा, प्रतीक्षालय में काफी लोग सज-धज कर बैठे हुए थे। वहीं राधाकृष्ण प्रसाद जी से भेंट हुई। मुझे देखते ही वह बोले—

"आप भी क्यों नहीं बैठ जाते ? दिल्ली के लिए 'न्यूज रीडर' का चयन हो रहा है।"

"मैंने आवेदन-पत्र तो दिया नहीं है।"

"कोई जरूरत नहीं है। यह लीजिए स्क्रिप्ट। दो-चार बार पढ़कर अभ्यास कर लीजिए। आपकी आवाज का डिस्क भी इन्हीं लोगों के डिस्क के साथ दिल्ली चला जाएगा।"

दिल्ली का दाना-पानी लिखा था। मेरी आवाज का डिस्क दिल्ली पहुंचा। कई केन्द्रों से बहुत-सारे उम्मीदवारों के डिस्कों के साथ मेरी आवाज का डिस्क भी सुना गया और मैं चुन लिया गया। पाठक शायद यह जानने को उत्सुक होंगे कि 'न्यूज रीडर' अर्थात् समाचार सुनाने वाले भारी-भरकम व्यक्ति को कितना वेतन मिलता होगा। प्रिय पाठक, यदि आप चौंकें नहीं तो बताना चाहूंगा कि उन दिनों मुझे दो सौ बीस रुपये माहवार पर दिल्ली बुलाया गया था। पटना में एनाउंसर के नाते मुझे एक सौ बीस रुपये मिलते थे। उन दिनों हिन्दी के वरिष्ठतम न्यूज रीडर थे, देवकीनन्दन पांडेय जिन्हें सूखा पांच सौ रुपया मिलता था। तब स्टाफ आर्टिस्टों को न तो महंगाई-भत्ता मिलता था, न मकान-भत्ता। तब वे मकान पाने के हकदार भी नहीं थे। वार्षिक वेतन-वृद्धि भी उन्हें नहीं मिलती थी।

ताड़ से गिरे तो खजूर पर जा लटके। दिल्ली में जिस सज्जन ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया था, वे दिल्ली के उपमुख्य आयुक्त के भतीजे थे। उनका दबदबा समाचार विभाग के अधिकारियों पर भी था। उनकी आवाज 'पापी पपीहा' जैसी आवाज थी और किसी कॉलेज के दरवाजे तक भी वह नहीं पहुंच पाए थे। दबाव पड़ा तो द्वितीय स्थान पा गए। उन्हीं की कृपा से मुझे इतने कम शुल्क (स्टाफ आर्टिस्टों को वेतन नहीं शुल्क दिया जाता है) पर बुलाया गया था। लोगों ने सोचा, इतने कम शुल्क पर पटना से दिल्ली भला कौन आएगा ? मैं मजबूर था। मेरी गोद में पांच साल के एक भतीजे ने बीमार होकर दम तोड़ दिया था। उन्हीं दिनों एम० ए० की परीक्षा थी जिसमें मैं शामिल नहीं हो पाया था। इस दुर्घटना के बाद ही मेरी साइकिल और रही-सही पूंजी चोरी चली गई। तभी आकाशवाणी पटना के अधिकारियों ने मेरा उग्र रूप देखकर मुझे काम देना बंद कर दिया था। क्या करता ? बैठे से बेगार भला। इसीलिए मैं दिल्ली चला आया।

दो वर्षों तक महीने-महीने भर के अनुबंध पर त्रिशंकु की भांति मैं बहैसियत 'न्यूज रीडर' के पद पर काम करता रहा। वहां से भी हिंदी के 'नोबी क्लार्क' को मित्र लोग खदेड़कर ही दम लेते यदि संयोग से सत्यनारायण बाबू जैसे अभिभावक मुझे न मिल गए होते। श्री सत्य-नारायण सिंह उन दिनों केंद्रीय मन्त्रिमंडल में थे और मेरी आवाज के बहुत बड़े प्रशंसक बन गए थे। यह कहना गलत होगा कि मैं अपनी प्रतिभा, अच्छी आवाज और सर्जनात्मक शक्ति के बूते पर ही ऑल इंडिया रेडियो, दिल्ली मे स्थायित्व पा गया। वस्तुतः यह स्थायित्व मुझे सत्यनारायण बाबू की कृपा से ही सुलभ हो सकी थी।

लिखने-पढ़ने की प्रवृत्ति मुझमें शुरू से ही थी। कविता, कहानी और लेख लिखने के साथ-साथ, एक उपन्यास 'चाद के धब्बे' पूरा करके प्रेस मे दे चुका था। मेरी यह सर्जनात्मक भूख 'ऑबजेक्टिव' ढंग से समाचार पढ़ने में मिटती नही थी।

शब्द मे ध्वनि होती है। ध्वनि ही अर्थ को ग्राह्य बनाती है। विभिन्न शब्दों के समूह को ही वाक्य नही कहते। बल्कि प्रत्येक वाक्य मे अर्थ के साथ-साथ आंतरिक भाव होता है। यदि विभिन्न शब्दों में निहित ध्वनि और वाक्यों में निहित भाव की अनगूंज श्रोता तक नही पहुंची तो वह उस वाक्य को सही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण नही कर पाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि समाचार तक सुनाने में ऑबजेक्टिव होने के साथ-साथ कभी-कभार किंचित 'सबजेक्टिव' भी होना चाहिए। बेशक, समाचार पढ़ने में अभिनय अथवा स्वाग से बचना बहुत जरूरी है। किंतु शब्दों पर सार्थक जोर, स्वर के आरोह-अवरोह में, भाव के अनुरूप, सहज लयबद्धता इस प्रकार होनी चाहिए कि वह कृत्रिम और ओढ़ी हुई नही लगे। इस दृष्टि से मैने समाचार पढ़ने के प्रयोग किए। यहां मैं उल्लेख करना चाहूंगा कि संगठन की ओर से इस महत्त्वपूर्ण विधा के प्रशिक्षण की न तब व्यवस्था थी, न आज है।

आज से छप्पन-सत्तावन साल पूर्व भारत में 'ऑल इंडिया रेडियो' की स्थापना हुई। दूसरे विश्व युद्ध के समय इसकी उपादेयता सिद्ध हो गई। जैसा कि सब जानते है, अमेरिका में समाचार-पत्रों को विज्ञापित करने और उनका प्रचार-प्रसार करने के लिए रेडियो की स्थापना की गई थी और जब रेडियो ने वहां समाचार-पत्रों का ही स्थान लेना शुरू कर दिया तो उन समाचार-पत्रों ने रेडियो के विरुद्ध जेहाद छेड़ दिया

था। किंतु जनता इस माध्यम से इस कदर प्रभावित हो चुकी थी कि उसने बड़े-बड़े समाचार-पत्रों का मुंह बंद कर दिया। गरज यह कि जनता और सरकार रेडियो जैसे सशक्त माध्यम की उपादेयता से पूरी तरह प्रभावित है। विभिन्न विकसित देशों में इस माध्यम के अनुरूप तंत्र की व्यवस्था की गई है। इस माध्यम में व्यावसायिक और पेशेवर लेखकों, प्रोड्यूसरों, नियोजकों, एनाउंसरों, न्यूज़ रीडरो और कमेंटेटरों को महत्त्व के प्रमुख स्थान दिए गए हैं। दुर्भाग्य से अपने देश भारत में अब तक रेडियो माध्यम के अनुरूप व्यवस्था और तंत्र को परिवर्तित, परिवर्धित नही किया जा सका है। स्थापना संहिता आदि नियमावलियों में दुरूह पद्धतियां दर्ज कर दी गई है, जिनके दायरे मे संगीत, नाटक, वार्ता और रूपक कार्यक्रमों का विकास नहीं हो पा रहा है। यहां वर्जन अधिक है, सर्जन कम। जब तक ऊपर से आदेश नहीं आता, तब तक अरसे से चली आ रही नीति का अनुपालन होता रहता है।

पडोसी देश चीन ने सन् 1962 में भारत की उत्तरी सीमा पर आक्रमण कर दिया। समाचार-पत्रों की सुर्खियां आग उगलने लगीं। पत्र-पत्रिकाओं में छपे ओजपूर्ण लेख पढ़-पढ़कर जन-मन उद्वेलित हो उठा। खेत-खलिहान में और मंडी-बाजार में युद्ध की जय-पराजय की चर्चा चल पड़ी। देश की हवा में अदृश्य आग तरल होकर बहने लगी। लेकिन, आकाशवाणी से सारंगी-सितार अपनी धुन में बजते रहे। प्रशासक तय नही कर पा रहे थे कि गांधी जी की अहिंसा के समर्थक मंत्री के समक्ष युद्ध-विषयक कार्यक्रम का प्रस्ताव किस प्रकार पेश किया जाए।

यह नागरिक के नाते मुझे भी लोगों से मिलने-जुलने का अवसर प्राप्त हुआ करता था। जहां जाता, वही यह प्रश्न झेलना पडता था कि आकाशवाणी को क्या हो गया है? वह देश का 'मूड' पहचान क्यों नहीं पाती? क्या उसे लकवा मार गया है? मैं उन दिनों समाचार विभाग में 'समाचार-दर्शन' (न्यूज रील) का डिप्टी चीफ प्रोड्यूसर था। मुझे हफ्ते में समाचार-दर्शन के तीन कार्यक्रम प्रस्तुत करने पड़ते थे। देश के विभिन्न भागों में आयोजित राष्ट्रीय महत्त्व के प्रमुख समारोहों अथवा घटनाओं की ध्वनि अंकित सामग्री (टेप रिकार्डिंग) को संपादित करके यह कार्यक्रमतैयार किया जाता था। युद्ध छिड़ जाने के बाद भी कई रोज तक कार्यक्रम की दिशा बदलने के संबंध में नीति-विषयक कोई आदेश

प्राप्त नहीं हुआ था।

मैंने सोचा, इस समय अहिंसा को सही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने की आवश्यकता है। गांधी जी कायरों की अहिंसा नहीं, बल्कि वीरों की अहिंसा के समर्थक थे। ऐसे समय में बेहतर होगा कि देश उन वीरों को याद करे, जिन वीरों ने देश को जगाने के लिए हंसते-हंसते अपने जीवन की आहुति दे दी थी। विवेकपूर्वक परमार्थ की राह पर मर-मिटना हिंसा नहीं, बल्कि अहिंसा ही है। यही सब सोचकर मैंने देश के क्रांतिकारियों के जीवन से सबद्ध घटनाओं को आज के संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहा। किंतु आकाशवाणी में तब तक क्रांतिकारियों पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अलिखित मनाही थी।

यदि मैं इस विषय पर उच्च अधिकारियों से राय मांगता तो निश्चय ही तर्क के दलदल में फंस जाना पड़ता। यह सोचकर मैंने खतरा मोल लिया और अमर शहीद भगतसिंह की मां और उनके परिवार के सदस्यों का इंटरव्यू ध्वनि अंकित कराकर आनन-फानन मंगवा लिए। इन पर आधारित समाचार-दर्शन का कार्यक्रम मैंने दस मिनट की बजाय बीस मिनट की अवधि का तैयार कर लिया। कार्यक्रम का टेप दिल्ली केंद्र को देकर मैं यह सोचकर घर चला गया कि कल मुझे नौकरी से भी हाथ धोना पड़ सकता है।

उन दिनों मैं 11 कैनिंग लेन में रहता था। रात में ठीक 8-30 बजे समाचार-दर्शन का कार्यक्रम प्रसारित होने लगा। इंटरव्यू को जोड़ने वाले मेरे शब्द काफी ओजपूर्ण थे। मेरे वाक्यों का संदर्भ था—चीनी आक्रमण। मेरी शैली आक्रामक थी। विषय के अनुरूप मेरी आवाज में आक्रोश, व्यंग्य और चुनौती भरी हुई थी। मैंने भगतसिंह की कुर्बानी याद दिलाते हुए श्रोताओं को ललकारने की कोशिश की थी।

8-50 पर इधर कार्यक्रम समाप्त हुआ और उधर टेलीफोन की घंटी बजी। मेरे काटो तो खून नहीं। देर तक घंटी बजती रही। अंत में हार-थककर चोंगा उठाना पड़ा। उधर से आकाशवाणी के महानिदेशक, बी० पी० भट्ट बोल रहे थे—

"वेल डन, सिंघ सागर। बहुत अच्छा प्रोग्राम था। मैं इसी तरह का प्रोग्राम चाहता था। आपने रास्ता दिखा दिया।"

मेरी जान में जान आई। दरअसल, श्री भट्ट घोर रूप से देशभक्त और राष्ट्रवादी अधिकारी थे। मेरे भाग्य से उन दिनों कोई 'काला

साहब' या मूलोछिन्न बुद्धिजीवी आई० सी० एस० अथवा आई० ए० एस० व्यक्ति रेडियो का महानिदेशक नहीं था, अन्यथा मेरी खैरियत नहीं थी। इसके बाद मैं लगभग हर रोज इस तरह के समाचार-दर्शन प्रसारित करने का आदेश पा गया। एक नया कार्यक्रम मैंने शुरू कर दिया जिसका नाम दिया—'गरुड़ और सांप।' इस कार्यक्रम के जरिए मैंने भारत की ओजपूर्ण वीर परंपरा को प्रतिपादित किया।

स्थापना संहिता और नियमावलियों के चलते ही आकाशवाणी से अच्छे कार्यक्रम प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। एक बार मुझे आदिवासियों पर अखिल भारतीय स्तर के एक रूपक का आलेख तैयार करने के लिए रांची के पास 'खूंटी' जाना पडा। यह पहाडी इलाका है। दूर-दूर के पहाड़ों पर आदिवासी बसे हुए है। इनके छोटे-छोटे गांव है। मेरे लिए यह सभव नहीं था कि मै उन पहाड़ों पर बसे गांवो तक जा सकू। इसलिए तय किया गया कि आदिवासियों को ही 'खूटी' स्थित विश्रामगृह में आमत्रित कर लिया जाए। यही उनके गीत, नृत्य आदि का आयोजन किया जाए। यहीं पर इंटरव्यू भी ले लिया जाए। मेरे साथ चलने वाले आदिवासी गाइड ने कहा—

"यह तो हो जाएगा। लेकिन, हमारे आदिवासी जब तक 'हंड़िया' (शराब) नही पिएंगे तब तक वे नाचने, गाने और बजाने को तैयार नही होंगे।"

मैंने हाल ही मे चीफ प्रोड्यूसर (रूपक) का पद संभाला था। प्रशासनिक नियमावलियों से बहुत परिचित नही था। इसलिए मैंने तुरंत हामी भर दी। लगभग साठ आदिवासी एकत्रित हुए, जिनमे 22-23 महिलाएं भी थी। कार्यक्रम के लिए मुझे बहुत ही उपयोगी और जीवंत सामग्री मिल गई। उन आदिवासियों को खिलाने और हड़िया पिलाने में लगभग दो सौ रुपये खर्च हो गए। जब मैं प्रसन्नता से प्रफुल्लित होता हुआ दिल्ली पहुंचा, तब मालूम हुआ कि मुझे आदिवासियों को हड़िया नही पिलानी चाहिए थी। दो सौ रुपये तो दूर, मैं डेढ रुपया खर्च करने का भी अधिकार नही रखता था। खर्च करने के लिए मुझे पहले से ही मंजूरी लेनी चाहिए थी। हड़िया पिलाने की मजूरी तो फिर भी नही मिलती क्योंकि सरकार 'नशाबंदी' की नीति पर चलती है। मुझसे कहा गया कि "आप कंटिनजेन्सी के नाम पर बिल बना लेते या उन आदिवासियों से अनुबंध-पत्र पर दस्तखत करा लेते,

और अनुबंध के पैसे स्वयं रख लेते जिससे कि हड़िया का दाम निकल आता।'' चोरी सिखाने वाली इन नियमावलियों से मुझे तभी से चिढ़ है और मैं अनुभव करता हूं कि अंग्रेजों से विरासत में प्राप्त यह शंकालु पद्धति भी हमारे चारित्रिक पतन का एक कारण है।

उन्हीं दिनों आकाशवाणी के महानिदेशक ने कार्यक्रम-समीक्षा और नियोजन संबंधी बैठक मे सुझाव दिया कि 'अबूझ मांड' नामक आदिवासियों की जाति रूपकों के राष्ट्रीय कार्यक्रम में एक रूपक प्रस्तुत किया जाए। इस कार्यक्रम पर सामग्री संकलन के लिए 'अबूझ मांड' के क्षेत्र में जाना पड़ता। उस क्षेत्र मे पहुंचना आसान काम नहीं है। वहां तक सड़क भी नही जाती है। उस इलाके में ऊंची-ऊंची घास और कांस व्यापक रूप से जंगल की तरह उगी हुई है, जिसमें हिंस्र पशु विचरण करते हैं। 'अबूझ मांड' जाति के आदिवासी सभ्य संसार से बिलकुल कटे हुए हैं। पूछताछ के बाद मालूम हुआ कि वहा किसी प्रकार पहुंचा तो जा सकता है, लेकिन सबसे पहले आदिवासियों को विश्वास में लेना होगा, अन्यथा वे न तो हमारे पास आएंगे और न हमसे बात करेंगे। उन्हें विश्वास में लेने का तरीका यह है, कि काफी मात्रा में मारकीन कपड़ा, किरासन तेल और खाने वाला नमक ले जाया जाए। इन चीजों की वहां बहुत कमी है। यदि हम ये वस्तुएं उन्हें मित्रता-स्वरूप भेंट में दे सकें, तो उनका स्नेह हमें प्राप्त हो जाएगा।

यह सूचना मुझे मध्य-प्रदेश के आदिवासी-कल्याण-विभाग से मिली थी। दूध का जला मुह छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है। खूंटी के आदिवासियों को हंडिया पिलाकर मैं दो सौ से कुछ अधिक रुपयों का दंड भुगत चुका था। इसलिए जान को जोखिम में डालने के साथ-साथ साढ़े चार-पांच सौ रुपये गवाना मैंने उचित नही समझा। एक प्रस्ताव बनाकर मैंने प्रशासन के महारथियों की सेवा मे भेज दिया। दो-चार बार उन लोगों से इस विषय पर बात भी हुई, जिसका सारांश यह है कि मैन्युअल में इस तरह के भुगतान की कोई व्यवस्था नहीं है। निदान, श्रोताओं के लिए 'अबूझ मांड' अब तक अबूझ बना रह गया।

इस तरह की कई घटनाएं हैं, जिनका उल्लेख करके यह सिद्ध किया जा सकता है कि आकाशवाणी की प्रशासन-व्यवस्था और उसकी नियमावली वस्तुतः यहां से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम के विकास और संवृद्धि में बाधक है। इस माध्यम को सचिवालय की पद्धति से मुक्त

किया जाना चाहिए।

बंगला देश को मुक्त करने के लिए जब युद्ध शुरू हुआ तब देश-विदेश के संवाददाता आनन-फानन कलकत्ता, करीमगंज और अगरतल्ला जा पहुंचे। देश के अखबारों के प्रतिनिधि भी अभियान में आगे बढ़ती हुई सेना के पीछे-पीछे जाने की अनुमति पा गए। किन्तु आकाशवाणी के प्रशासक आदेश की प्रतीक्षा में ऊंघते बैठे रहे। कुछ दिन बीत जाने पर (जब भारतीय सेना ने जैसोर जीत लिया था) संसद में आकाशवाणी की आलोचना हुई। मंत्री जी ने आकाशवाणी भवन में आकर अधिकारियों की बैठक की और उनसे आग्रह किया कि उन्हें समय रहते ही आवश्यक कदम उठाने चाहिए थे। उसी बैठक में यह सवाल उठाया गया कि दिल्ली से कुछ कार्यक्रम-अधिकारियों को युद्ध-स्थल पर जाना चाहिए। इसी अवसर पर अशोक वाजपेयी ने तथाकथित कार्यक्रम-अधिकारियों (प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव, असिस्टेण्ट डायरेक्टर आदि) की कड़े शब्दों में आलोचना की। जब युद्धस्थल में जाने के लिए स्वयंसेवकों के नाम मांगे गए तब इन तथाकथित अधिकारियों में से किसी ने भी अपना नाम नहीं दिया। मैंने और मुरजोत सेन ने अपने नाम दे दिए।

मैं इससे पहले भी नवम्बर और दिसम्बर में दो बार बंगला देश की परिक्रमा कर चुका था और चार-पांच स्थलों पर बंगला देश के भीतर जा चुका था, किन्तु, जब वास्तविक युद्ध के दिनों में मैं वहां पहुंचा तो पाया कि आकाशवाणी के प्रशासकों ने हम लोगों को भगवान-भरोसे ही छोड़ दिया है।

पंद्रह दिसम्बर, 1971 को मैं खुलना में था। भारतीय सेना जैसोर से चलकर खुलना से कुछ इधर ही ‥‥नदी के इस पार मोर्चा लगाए युद्ध-रत थी। स्वर्गीय ललित नारायण मिश्र और जनरल मानिक शॉ में व्यक्तिगत तौर पर मित्रता थी। ललित बाबू की पैरवी पर जनरल मानिक शॉ ने मेरे संबंध में खुलना स्थित सैनिक अधिकारियों को मुझे यथासंभव सुविधाएं देने का संदेश भेज दिया था। इसलिए मुझे अग्रिम मोर्चे से भी आगे शत्रु पंक्ति तक जीप से ले जाया गया। दुर्भाग्य से जीप चलाने वाले मेजर उत्साह के अतिरेक में यह भूल गए कि वे शत्रु पंक्ति से भी आगे निकल गए हैं। उन्हें खतरे का आभास तब हुआ,

जब भारतीय सेना का एक जवान, खंदक में अपनी पोजीशन छोड़ बाहर निकलकर चिल्ला उठा—'सामने दुश्मन का मोर्टार है।' मेजर यह सुनकर अचानक ही बहुत घबड़ा गया। उसने तीन बार जीप मोड़ने की कोशिश की, लेकिन तीनों बार वह घबराहट के मारे क्लच पर से पाव हटा लेता था, जिससे इंजन बंद हो जाता था। हम लोग इस बीच देखते रहे कि लगभग ढाई-तीन सौ गज की दूरी पर दुश्मन का 'मोर्टार दस्ता' सक्रिय हो उठा है।

बहुत तोप-भरोस देने के बाद मेजर आश्वस्त हुआ और उसने जीप को जैसोर की तरफ घुमा लेने में सफलता प्राप्त कर ली। जीप अभी लगभग 60-70 गज गई होगी कि मोर्टार का गोला उसी स्थल पर गिरा जिस स्थल से हम लोग मुड़े थे। इस घटना से हमारे सैनिक मोर्चे पर और स्थानीय मुख्यालय में खलबली मच गई। चंद मिनटो के भीतर ही जोरदार गोलाबारी शुरू हो गई। सात-आठ मिनट के भीतर जैसोर से हमारे बम-वर्षक हवाई जहाज भी आ पहुंचे। मैं अपने सहायक, शोभाकांत राय, के साथ लगभग दो घंटे तक मौत की भयावह छाया में मशीनगनों, गोलों और बम-वर्षा की ध्वनियों की रिकार्डिंग करता रहा।

सोलह दिसम्बर, 1971 को हम लोग वायु सेना के हवाई जहाज और हेली कॉप्टर से ढाका पहुचे थे। वहा का लोमहर्षक दृश्य चित्रित करना यहां आवश्यक नहीं होगा। इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि युद्ध तो थम गया था, लेकिन मुक्तिवाहिनी और मुजाहिदों के बीच अभी तक संघर्ष जारी था। सडकों पर गोलियां चल रही थीं। फुटपाथों पर या पार्कों में लाशें पडी हुई थीं। हमारे लिए सबसे बड़ी कठिनाई आवास की थी।

सरकारी तौर पर इटरकाटीनेन्टल होटल को ही सुरक्षित स्थान घोषित किया गया था। इसलिए हम वहीं ठहर गए। पांच सितारों वाले होटल के किराए का मुझे तब तक अनुभव भी नहीं हुआ था। चलने के समय जब बिल देखा तब पांव तले से धरती खिसक गई। क्या करता, जेब खाली कर दी। कलकत्ते तक खाली जेब ही आया।

दिल्ली आने पर जब बिल प्रस्तुत किया तो यह कहकर उसे अस्वीकृत कर दिया गया कि मैं पांच सितारों वाले होटल में रहने का हकदार

नहीं था। उस दिन मुझे लगा कि अब तक हम लोग स्वाधीन नहीं हुए है। अभी भी अंग्रेजों का साम्राज्यवाद प्रच्छन्न रूप से हमारे शासन-तंत्र पर हावी है।

मै सन् 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान कुदनपुर (स्यालकोट के पास) डोगराइ, बर्की और खेमकरन की यात्रा कर चुका था। उन दिनों भी मौत के मुह से सही सलामत बच निकला था। मुझे उस समय की एक घटना की याद करके आज भी रोमांच हो आता है।··· युद्ध विराम एक दिन पहले हुआ था। चारों तरफ यहां-वहां सुरंगें बिछी थी। धोखे में कही ऐसी जगह पांव पड जाए जहां सुरंग हो तो शरीर के चिथड़े उड़ जाएं। दुर्भाग्य से ऐसी घटना हमारे पहुंचने के पूर्व घटित हो चुकी थी, वह भी एक सैनिक अधिकारी के साथ। तोपखाने के कर्नल जोशी जीप से अग्रिम मोर्चे का निरीक्षण कर रहे थे कि जीप का पहिया छिपी हुई सुरंग पर जा पडा और जीप के साथ-साथ कर्नल जोशी के टुकड़े-टुकड़े हो गए। मेरे साथ मदनलाल सहायक था। इच्छोगिल नहर में उतर कर वह रिकार्डिंग कर रहा था। उस पार पाकिस्तानी सैनिक सौ गज दूर से बंदूकें ताने खड़े थे! मदनलाल ने कहा—"साहब, यहां तो के०एस०मलिक को रिकार्डिंग करने आना चाहिए था। वे मर जाते तो सरकार उनके परिवार को मुआवजा देती। हम तो स्टाफ आर्टिस्ट हैं। कुछ नहीं मिलेगा हमें। मलिक जो उन दिनों आकाशवाणी के उप-महानिदेशक थे। मदनलाल का दर्द मुझे अपने दर्द जैसा लगा।

बंगला देश के युद्ध मे तो मौत सिर पर ही मंडराती रही। ढाका में यदि मुक्तिवाहिनी के नायकों ने सरक्षण नहीं दिया होता तो आज ये पंक्तियां लिखने के लिए मैं जीवित नहीं बचता। इस तरह बार-बार असुरक्षित ढंग से आकाशवाणी के लिए युद्ध-स्थलों में जा-जाकर कार्यक्रमों के लिए बुनियादी सामग्री एकत्र करता रहा। ढाका में सरकारी तौर पर उन दिनों कोई भी निवास सुरक्षित घोषित नहीं किया गया था। इसीलिए पांच सितारों वाले होटल इंटर कांटीनेंटल में ठहरना पड़ा। किंतु प्रशासन की नियमावलियों के लेखक तो अंग्रेज महाप्रभु थे, जो हम पर शासन करने आए थे। इसलिए हमें शंका की नजर से देखते थे। उनकी दृष्टि में हम अविश्वसनीय ही नहीं, अक्षम थे, अनधिकृत थे और थे मात्र घृणा के पात्र। आज भी उसी तरह की नियमावलियों

को लागू करना क्या यह सिद्ध नहीं करता कि हमारे प्रशासन की मानसिकता ज्यों की त्यों है ? बहरहाल, संयोग से मंत्रालय में एक दाक्षिणात्य अधिकारी से मेरी जान-पहचान थी। बात ही बात में जब मैंने होटल में ठहरने की बात उनसे कही तब उन्होंने आग्रह किया कि "आप अपने निदेशालय को मजबूर कर दीजिए कि वह आपका बिल मत्रालय को भेज दे।" उस सज्जन का मैं आभारी हूं जिन्होने विशेष परिस्थिति के नाम पर उस बिल का भुगतान करवा दिया।

इन उदाहरणों को अंकित करने का उद्देश्य इतना ही है कि आकाशवाणी का प्रशासन जब तक कार्यक्रम के लिए उपयोगी सामग्री के संकलन की समुचित सुविधा सुलभ नही कराता, तब तक आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम बनावटी, बेजान और बेकार ही रहेंगे। सचिवालय के अधिकारी एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में निरीक्षण के लिए जाते है। उन्हें खेत-खलिहान, नदी-पर्वत, कल-कारखाने और युद्ध-स्थल के खाई-खदक की यात्रा नही करनी पड़ती। कार्यक्रम को विश्वसनीय और अधिकृत बनाने के लिए इन स्थलों की यात्रा अनिवार्य है। इसके अनुरूप वित्तीय नियमावलियों में संशोधन करना भी आवश्यक है। यह परिवर्तन तब तक सभव नही होगा जब तक आकाशवाणी के ढांचे मे ही आमूल-चूल परिवर्तन नहीं कर दिया जाता।

आकाशवाणी में कार्यक्रम के प्रति जिम्मेवार सदस्यों को कार्यक्रम के विषय निर्धारित करने की पूरी स्वतंत्रता नहीं है। धीरे-धीरे इस स्थिति में गिरावट ही आती जा रही है। जो नहीं जानते कि किस विषय पर नाटक हो सकता है और किस विषय पर रूपक, जिन्हे यह भी नही मालूम कि वार्ता किसे कहते हैं और रेडियो-रिपोर्ट क्या है, दुर्भाग्य से ऐसे लोग ही आकाशवाणी में शीर्ष स्थान पर बैठे हुए हैं और अपने झक्कीपन का परिचय देने के लिए मनमाने आदेश देते रहते है कि अमुक विषय पर रूपक प्रस्तुत किया जाए और अमुक विषय पर नाटक।

हम अपने यथार्थ को पहचानने से आज भी कतराते हैं। यह सही है कि सरकारी सगठन होने के नाते आकाशवाणी सुरुचिपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है। किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है और धीरे-धीरे औद्योगीकरण की ओर

चढ़ रहा है। साथ ही, यहां की बहुसंख्यक जनता अपढ़ और अशिक्षित है। लेकिन वह स्वभाव और संस्कार से आध्यात्मवादी और धर्मभीरु है। आज धर्म का स्थान संप्रदायवाद और कट्टरता ने ले लिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें उनके यथार्थ का परिचय दिया जाए।

आदि गुरु शंकराचार्य, स्वामी विवेकानद और महर्षि रमण जैसे संत मात्र धार्मिक नेता नही थे, बल्कि बहुत बड़े चिंतक, विचारक और अध्यात्मवादी थे। उनके विचारों में कही भी कट्टरता की बू नही है। ये सब के सब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के हिमायती थे। इसी दृष्टि से मैंने इन जैसे बारह संतों पर अखिल भारतीय स्तर के रूपक प्रस्तुत करने का प्रस्ताव किया। तत्कालीन महानिदेशक अंग्रेजीपरस्त और पाश्चात्य संगीत के महान प्रेमी थे। उन्होंने कहा कि हम धर्म-निरपेक्षता में विश्वास रखते हैं। ऐसी हालत में उक्त धार्मिक नेताओं पर कार्यक्रम नही किया जा सकता।

मैं महानिदेशक के विचार से प्रभावित नही हुआ। इन संतों ने परमार्थ भाव से कर्म करते हुए मानवीय मूल्यों और उदात्त भावनाओं को स्थापित करने का उपदेश दिया था। मैं इसी ऊहापोह में कई रोज तक पड़ा रहा। अंत में एक उपाय सूझा। उन दिनों सूचना एव प्रसारण मंत्रालय के सचिव, श्री आदित्यनाथ झा थे। उन्हें मैं 'मीठे अंगूर' कहा करता था, क्योंकि सबके लिए उनका दरवाजा खुला रहता था। एक दिन दोपहर के समय मैं उनके यहां पहुंच गया और अपनी समस्या उनके सामने रख दी। श्री आदित्यनाथ झा भारत के प्रसिद्ध शिक्षाविद् सर गंगानाथ झा के सुपुत्र थे। वह स्वयं संस्कृत के उद्‌भट विद्वान थे। मेरी बात सुनते ही, वह अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही आगे की ओर अचानक झुक आए। मुंह का पाइप उन्होने हाथ में ले लिया। उनकी भृकुटी चढ़ गई। वह किंचित क्रुद्ध स्वर में बोले—

"कठिनाई यह है कि हमारे पढ़े-लिखे अधिकारी अपने देश की विचारधारा से बिलकुल कटे हुए हैं। वे रहते यहां हैं और सपने विलायत के देखते हैं। आप ऐसा कीजिए कि दोबारा इन रूपकों का प्रस्ताव महानिदेशक के पास भेज दीजिए और लिखिए कि पहला रूपक आदि गुरु शंकराचार्य पर होगा, जिसमें शंकराचार्य द्वारा रचित संस्कृत श्लोकों का पाठ, आदित्यनाथ झा स्वयं करना चाहते है। प्रस्ताव में रिकार्डिंग

की तिथि भी निश्चित कर दीजिए। उस दिन मैं स्टूडियो चला आऊंगा। नोट में यह भी लिख दीजिए कि सचिव महोदय एक कलाकार की हैसियत से स्टूडियो आ रहे हैं, इसलिए कोई अधिकारी उनके स्वागत के लिए वहां न रहे।"

मेरा यह उपाय कारगर सिद्ध हुआ। प्रस्ताव पढ़ते ही महानिदेशक महोदय ने मुझे बुलाया और सचिव के स्टूडियो आने पर समुचित व्यवस्था आदि पर चिंता प्रकट की। इस प्रकार मैं उन बारह संतो पर एक वर्ष के भीतर बारह रूपक प्रस्तुत करके धर्म-निरपेक्षता की गलत धारणा मिटाने में सफल हो सका।

राजतिलक

राजतिलक

श्री शिवसागर मिश्र विरचित ऐतिहासिक उपन्यास 'राजतिलक' का रेडियो रूपान्तर।

[सगीत उभर कर पृष्ठभूमि में चलता रहता है।]

पहला गंभीर स्वर : ससार दुख से जल रहा है। जहां दुख ही दुख है, वहां शक्ति कैसे मिले ? इसका उत्तर तुम्हारे ही पास है। शत्रु बाहर नही है "तुम्हारा शत्रु तुम्हारी आत्मा ही है। उसे जीतो तुम्हे उत्तर मिल जाएगा। सुख के द्वार खुल जायेंगे।

दूसरा स्वर : ये शब्द हैं"'भगवान महावीर तीर्थंकर के जिन्होने आज से लगभग सवा पच्चीस सौ वर्ष पहले हिंसा, भेदभाव और घात-प्रतिघात से परिपूर्ण आर्यावर्त के सत्रस्त वातावरण को अपने उपदेशों से सुशीतल कर दिया। उन दिनों मगध और वैशाली से दो अलौकिक रश्मिया उद्भासित हुई"' एक राजनीतिक दूसरी आध्यात्मिक। उन्ही दिनो सोलह महाजनपदो मे बंटा हुआ आर्यावर्त एक देश भारत की सीमा से सिमटने लग गया था। छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में मगध का राजा था—बार्हद्रथ वंशी रिपुंजय, किन्तु शासन चलता था महामात्य पुलिकसेन का जो अवति महाजनपद का भी शासक था। पुलिकसेन असमर्थ एवं विलासी राजा रिपुंजय को हटा कर अपने पुत्र कुमारसेन को मगध का राजा बनाने की कुचेष्टा में लगा था। लेकिन तभी पेशेवर सैनिकों के नेता भट्टिय हेमजित ने विद्रोह कर दिया और कुमारसेन को मार कर अपने पन्द्रह वर्षीय पुत्र बिम्बिसार को मगध के राजसिंहासन पर बैठा दिया। और इसी बिम्बिसार के समय से मगध का विस्तार

आरम्भ हुआ जो आज के भारत के राजनीतिक स्वरूप का शुभारम्भ था।

[संगीत उभर कर घोड़े की टापों में खो जाता है।]

व्याध्रक : (विशाल द्वार खटखटाकर) प्रतिहारी !

प्रतिहारी : (ऊंघते हुए) कौन है ?

व्याध्रक : द्वार खोलो।

प्रतिहारी : तुम हो कौन ?

पुलिक . (धीमे से) सावधान व्याध्रक। मैं अभी गिरिव्रज में नहीं हूं, अवन्ति में हूं।

व्याध्रक : मैं समझ गया, आर्य।

प्रतिहारी : बोलते क्यो नही ? कौन हो तुम लोग ?

व्याध्रक : राजसेवक।

प्रतिहारी : फिर तो तुम्हें भली भांति मालूम होना चाहिए कि रात्रि का पहला प्रहर व्यतीत होने पर गिरिव्रज नगर का महाद्वार नही खुल सकता।

व्याध्रक ' हम मडलेश्वर के संदेशवाहक है।

प्रतिहारी : संकेत शब्द ?

व्याध्रक : व्रात्यजन।

प्रतिहारी : प्रहरियो, द्वार खोल दो शीघ्र। (द्वार के करंकर कर खुलने की आवाज। घोड़ों के द्वार में से होकर नगर में दाखिल होने की आवाज। टापें कुछ देर चलती रहती हैं।)

पुलिक : हम कहां तक आ पहुंचे व्याध्रक ?

व्याध्रक : मगध के शस्त्रागार के पास, आर्य ब्राह्मण।

पुलिक : आर्य ब्राह्मण नहीं, सम्राट कहो। मगध महाजनपद का राजसिंहासन बार्हद्रथ रक्त में अभिषिक्त होकर, समस्त जम्बूद्वीप के एकछत्र साम्राज्य का मूर्धन्य स्थान ग्रहण करने को आतुर है।

व्याध्रक : जी महाराज। (जल्दी में उल्लास से) महाराज वह देखिए। एक प्रहरी शस्त्रागार की दीवार के पास पड़ा खर्राटे भर रहा है।

पुलिक : हूं।...इस शस्त्रागार में इस प्रहरी के अतिरिक्त और

कितने हैं जो दुख की नींद सो जाना चाहते हैं ?

व्याघ्रक : नायक सहित दस और श्रीमान् ।

पुलिक : तो शीघ्रता करो व्याघ्रक । परन्तु सावधान । कल प्रातः-काल तक नगर महानायक पुलिकसेन शिविर में नहीं है समझे । सभी मृत प्रहरियों के दाह संस्कार के लिए शस्त्रा-गार को ही चिता का रूप प्रदान करना होगा । कल दिन के दूसरे प्रहर प्रासाद में उपस्थित होओ ।…

[दूर कहीं हल्का कोलाहल]

पुलिक : यह कोलाहल तो सामन्त मित्र देव के प्रासाद से आता मालूम होता है ।

व्याघ्रक : जी श्रीमान ।

पुलिक : इसका अर्थ हुआ कि उसका पुत्र भट्टिम हेमजित तक्ष-शिला से लौट आया । इसका प्रतिकार भी शीघ्र ही करना होगा । अच्छा…अब तुम जाओ । शीघ्रता करो ।

[एक-आध क्षण के बाद, कुछ लोगों की 'बचाओ-बचाओ' की आवाजें । दो-एक बार हल्की तलवार की लड़ाई, थोड़ी भाग-दौड़ और फिर शस्त्रागार का जलना ।

पुलिकसेन 'बचाओ' 'बचाओ' की आवाज पर एक बार हंसता है और फिर थोड़ा दूर चला जाता है । यह शोर धीमा पड़ जाता है और दूर कहीं से कोला-हल की आवाज पास आ जाती है । लोग हंस रहे है । 'साधु' 'साधु' कह रहे हैं । हल्का संगीत भी है ।]

सामन्त : (थोड़ा नशे में भाषण-सा करते हुए) भट्टिम हेमजित ! आज तुम्हें आठ वर्ष के बाद पुनः अपने बीच पाकर हमें बहुत प्रसन्नता है । अपने साथ तुम तक्षशिला से अनुपम सुन्दरी वधू लाए हो…इससे हमारी प्रसन्नता दुगनी हो गई ।

हेमजित : इतनी लम्बी और कठिन यात्रा के कारण हम थक गए हैं । यदि आपकी आज्ञा हो तो हम अब विश्राम करें । मुझे आशा है आप…

कई सामन्त : हां-हां…अवश्य…अवश्य ।

सामन्त 2 : (थोड़ा नशे में) हां हेमजित, तुम जाओ, तुम दोनों को विश्राम की बहुत आवश्यकता है।

[सबकी हंसी जो धीरे-धीरे दूर हो जाती है।]

श्रवणा : (थोड़ा हंसते हुए) द्वार बन्द कर दो…प्रिय !

हेमजित : (द्वार बन्द करता है हंसी और कोलाहल बन्द हो जाता है। ठंडी सांस लेकर)…क्यों प्रिय…! गिरिव्रज कैसा लगा ?

श्रवणा : बहुत सुन्दर, किन्तु…

हेमजित : किन्तु क्या ?

श्रवणा : यहां की एक नवीनता मुझे बहुत अमानुषिक लगी। तुम लोग मनुष्य होकर भी मनुष्य को ही दास के रूप में रखते हो।

हेमजित : अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिए यहां के मुट्ठी-भर आर्य क्रूरात्मा हो गए हैं। अब तो यह प्रथा इनके धर्म संस्कार का अंग बन गई है।

श्रवणा : मुझे तो इस प्रथा को देखते ही गिरिव्रज की व्यवस्था से विरक्ति हो गई है। हम लोग भी आर्य हैं लेकिन हमारे तक्षशिला में यह प्रथा नहीं है।

हेमजित : वहां आर्यों को अनार्यों से भय नहीं है। क्योंकि, संख्या में आर्य बहुत अधिक हैं।… छोड़ो इन बातों को। यह पुराना रोग है। अभी तो जो नया घाव तुमने दिया है…उसका उपचार करने दो प्रिये !

श्रवणा : तुम बड़े…तुम बड़े दुष्ट हो। छोड़ो मुझे।

हेमजित : प्रिये !

श्रवणा : हूं।

हेमजित : प्रिये !

['प्रिये' शब्द संगीत में विलीन हो जाते हैं और उसी पर बाहर से लोगों की चीख़-पुकार की आवाज उभरती है।]

श्रवणा : यह…यह क्या ?

हेमजित : देखता हूं…(खिड़की के पास जाकर) शस्त्रागार में किसी ने आग लगा दी। मगध का दुर्भाग्य।

श्रवणा : क्या शस्त्रागार पर यहां पहरा नहीं होता ?

हेमजित : होता क्यों नहीं है, किन्तु राजा और महामात्य ही जब देश के शत्रु बन जायें, तब प्रहरी क्या कर लेंगे··· प्रिये, मगध के द्वार पर गृह-कलह का झंझावात सिर पटक रहा है।

श्रवणा : पटकने दो सिर। हम-तुम मिलकर उसके टुकड़े कर देंगे। अभी चलो नींद आ रही है।

हेमजित : चलो।

[संगीत]

हेमजित : श्रवणा ! प्रिये !

श्रवणा : है···हूं।

हेमजित : प्रिये उठो। आचार्य नारायण स्वामी ने किसी गंभीर कार्य से मुझे बुलाया है। मेरे अस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत करो। मुझ कल ही आचार्यपाद के दर्शन कर आने चाहिए थे। बड़ी भूल हो गई।

श्रवणा : प्रिय, शीघ्र लौटोगे न !

हेमजित : आने में कुछ देर हो सकती है प्रिये ! आचार्यपाद के दर्शन के बाद मुझे महाराज की अभ्यर्थना के लिए बाह्यास्थान मडप में जाना है।

श्रवणा : कोई चिन्ता नहीं प्राण। मैं संवर्त तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।

हेमजित : सच !

श्रवणा : और क्या झूठ !

हेमजित : और यदि संवर्त ही तुम्हें आत्मसात कर ले तो ?

श्रवणा : ऐसा नहीं हो सकता प्रिये ! मृत्यु को भी मेरे आदेश का पालन करना होगा। तुम्हारे दर्शन किए बिना मेरे प्राण मुझे नही छोड़ सकते।

हेमजित : प्रिये ! तुम्हें इतनी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। अच्छा··· अब···मैं चलूं। (मजाक से) तुम काव्यात्मक चिंतन में डूबो, मैं अभी आया।

[पदचाप आऊट।···पत्थर के विशाल भवन में

गूंजती हुई पदचाप उभरती है। दूर कहीं हल्की मन्त्रोच्चार की आवाज़।]

हेमजित : प्रणाम आचार्य !

नारायण : आयुष्मान, गिरिव्रज सकुशल आ पहुंचे। तक्षशिला में व्यस्य भूरिश्रवा स्वस्थ तो है ?

हेमजित : आचार्य क्षमा करें। मैं स्वयं चरण सेवा में आने वाला था कि आपका संदेश मिला। आचार्य भूरिश्रवा स्वस्थ हैं। उनका आदेश है कि मैं आपके मार्ग-निर्देशन में अपना जीवन-क्षेत्र निर्धारित करूं।

नारायण : आचार्य भूरिश्रवा भविष्यद्रष्टा है आयुष्मान ! मगध के पीड़ित लोगों को तुम्हारे त्याग और निष्ठा से ही अभय मिल सकता है। राज्यलिप्सा बलवती होती जा रही है। स्वार्थपूर्ण अनधिकार चेष्टाएं बढ़ती जा रही है। धर्म का विकृत स्वरूप, स्वार्थी लोगों की मूढ़ता, अमानुषिकता और अराजकता की ओर खींचे चला जा रहा है। इसका प्रतिकार तुम्हें करना है आयुष्मान !

हेमजित : आचार्य !

नारायण : शस्त्रागार के अग्निकांड का रहस्य जानते हो ?

हेमजित : राज्याध्यक्षों द्वारा प्रेरित नगर के दुष्टों का यह कार्य था आचार्य !

नारायण : नहीं। यह कार्य मगध जनपद के एक स्वार्थान्ध राज्याधिकारी का था।

हेमजित : जी !

नारायण : हां, वत्स। यही सत्य है। किन्तु, अभी जिज्ञासा की नहीं···कर्तव्य की घड़ी है। आज ही तुम्हें गिरिव्रज से पाटलिग्राम के लिए प्रस्थान कर देना है।

हेमजित : किन्तु···आचार्य···।

नारायण : तुम्हे सम्राट से मिलना है। यही न ? उनसे मिलने के पश्चात् सायंकाल प्रस्थान कर दो और अकेले।

हेमजित : अकेले···किन्तु आचार्य···

नारायण : आयुष्मान भट्टिय ! तक्षशिला की शिक्षा से क्या तुम

प्रश्न करना ही सीख पाए हो ?

हेमजित : भूल क्षमा करें आचार्य ! मैं आज ही पाटलिग्राम प्रस्थान कर दूंगा। मेरा तो इतना ही निवेदन था कि आचार्य भूरिश्रवा ने वैज्ञानिक दंडनीति विशारद आचार्य औदुम्बरायण की चर्चा करते हुए आदेश दिया था कि शिक्षा का व्यवहार पक्ष उनसे ही सीखू।

नारायण : समय आने पर सब व्यवस्था हो जाएगी। अभी तुम्हें पाटलिग्राम से आधा योजन दूर गंगा गंडकी के संगम-स्थल पर पहुंचना है। कल रात्रि के दूसरे प्रहर के अन्त में। वहां एक तरुण ब्राह्मण भिक्षु यथास्थान पहुंचा देगा। और मेरी-तुम्हारी भेंट गोपनीय रहे। सुमंगली श्रवणा को भी विदित न हो।

हेमजित . आप निश्चिन्त रहें आचार्य !

नारायण : मैं आश्वस्त हुआ वत्स। अब तुम जाओ।

हेमजित : प्रणाम आचार्य !

[फिर वही गूंजती पदचाप दूर हो जाती है और आऊट फिर हल्का कोलाहल।]

सामन्त 1 : यह…नवयुवक कौन है ?

सामन्त 2 : इसे नहीं जानते आर्य ? यह विश्वदेव का पुत्र हेमजित है और…

पुलिक : जोर से। तुम्हारा परिचय।

हेमजित : मैं परमपूज्य महाकुलीन परम भट्टारक श्रेणिय विश्वदेव का पुत्र एवं विश्रुत महानाम्नी महाकुलीन तक्षशिलीय आचार्य भूरिश्रवा का शिष्य भट्टिय हेमजित हूं। तक्ष-शिला से स्नातक होकर…

पुलिक : ठीक। ठीक है। शेष बातें मुझे विदित हैं।

प्रतिहारी 2 : ऊंचे स्वर में। पर भट्टारक, परमशैव, परम माहेश्वर परमपाद बार्हद्रथ वंश कुलावतंस वसुकुल गौरव मगधपति महाराज रिपुंजय पधारते हैं।

[कोलाहल हल्का…और फिर चुप्पी]

पुलिक : महाराज, यह श्रेणिय विश्वदेव के पुत्र, भट्टिय हेमजित

है। तक्षशिला से शिक्षा ग्रहण करके लौटे हैं। इस समय मगध को इनकी आवश्यकता भी बहुत है। मगध चम्पा की सीमा पर दस्यु उपद्रव मचा रहे हैं। अराजकता फैल गई है। परिषद का विचार है कि भट्टिय हेमजित को पांच सहस्र सैनिकों के साथ सीमा की सुरक्षा के लिए तत्काल भेज दिया जाए।

हेमजित : महाराज ! धृष्टता क्षमा करें। मुझे आज ही आवश्यक कार्य से बाहर जाना है। लज्जित हूं कि राज्यसेवा के गौरव से इस समय अपने को वंचित कर रहा हूं, किन्तु कार्य समाप्त होते ही महाराज की सेवा में उपस्थित होऊंगा।

पुलिक : राज्यादेश का उल्लंघन, राजद्रोह है तरुण !

हेमजित महामात्य, मैं मगध का स्वतंत्र नागरिक हूं। साथ ही श्रेणिय सदस्य भी हूं। श्रेणिय वल के विधान के अनुसार और जनपद के नियम के अधीन मुझे अधिकार है कि राजपद स्वीकार करूं या भिक्षाटन करूं या सार्थवाह की राह पकड़ूं। मैं महामात्य का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे नायक पद के उपयुक्त समझा। किन्तु मैं लाचार हूं।

सम्राट : भट्टिय ठीक कहता है महामात्य !

स्वर : (नगराध्यक्ष) महाराज, रात को शस्त्रागार जलाने के अभियोग में तीन सौ व्यक्ति बाहर उपस्थित हैं। आज्ञा हो तो···

सम्राट : नहीं-नहीं। यहां कोलाहल उत्पन्न करने से क्या लाभ ? उन सबको जीवित जला दिया जाये।

हेमजित : महाराज, मेरी प्रार्थना है कि इस कांड के कार्यकारण की पूरी-पूरी जांच के पश्चात् ही दंड की घोषणा की जाय। यह समुचित नहीं प्रतीत होता कि एकबारगी तीन सौ व्यक्तियों को जीवित जला डालने की आज्ञा दे दी जाय।

पुलिक : (क्रोधित) सभा में आकर सम्राट को सम्मति प्रदान करने का किसी नागरिक को अधिकार नहीं है। इस प्रकार मर्यादा उल्लंघन करने वालों के लिए मगध का दंड

निर्वासन बहुत ही कठोर और उग्र है। महामात्य से मेरा निवेदन है कि इस धृष्ट तरुण को सभा से बलपूर्वक बाहर निकाल देने के आदेश पर अपनी अनुमति प्रदान करें।

सम्राट : हां-हां, यह बहुत प्रलाप बोलता है। महामात्य का परामर्श उचित है। इसे शीघ्र निकाल दिया जाय।

पुलिक : प्रतिहारी !

सेनजित : सावधान। जब तक महाशिला के स्नातक के हाथ में खड्ग और तूणीर में बाण हैं, इस तुच्छ मंडप में सजीव आततायी अपनी निर्लज्जता का थोड़ा प्रदर्शन ही कर सकते हैं। राजा कर्तव्यच्युत हो गये हैं। इसलिए मैं राजाज्ञा के प्रतिरोध स्वरूप स्वयं यहां से चला जाता हूं। किन्तु सावधान, जो मेरा पीछा करेगा, वह काल कवलित हुए बिना नहीं रहेगा।

[चला जाता है। कोलाहल।]

पुलिक : व्याघ्रक ! कुछ योद्धाओं के साथ इस राजद्रोही का पीछा करो और जीवित या मृत मेरे सामने उपस्थित करो।

[शोर और ज्यादा। संगीत में विलीन।]

प्रतिहारी 2 : आपकी आज्ञानुसार महानायक व्याघ्रक बन्दिनियों को लेकर उपस्थित है।

पुलिक : (हंसकर) सैनिकों के नियंत्रण में बूढ़े विश्वदेव को बाहर ही रहने दो। व्याघ्रक के साथ दोनों तरुणियों को मेरे सामने उपस्थित करो।

प्रतिहारी 2 : जो आज्ञा।

पुलिक : अब इस धृष्ट तरुण को मालूम होगा कि राजनीति क्या होती है। महामात्य पुलिक के विरोध का क्या परिणाम होता है···हूं हूं हूं···।

[वन्दिनियों का प्रवेश।]

व्याघ्रक : आर्य ब्राह्मण ! वन्दिनियां उपस्थित हैं।

पुलिक : हूं। सुन्दर···व्याघ्रक ! इनमें से विश्वदेव की पुत्री कौन है ?

श्रवणा : मैं हूं परमवीर महाकुलीन आर्य विश्वदेव की पुत्री

श्रवणा और यह है उनकी कन्या विश्वतारा। कहिए, क्या आदेश है।

पुलिक : वीर भट्टिय की पत्नी प्रगल्भ प्रतीत होती है। धन्य है तक्षशिला जहां ऐसी कन्याएं बहुतायत से पाई जाती हैं।

श्रवणा : (क्रोध से) प्रगल्भा नहीं, वीरांगणा कहिए महामात्य। तक्ष-शिला धन्य है कि आप जैसे स्वामिभक्तों के चरणस्पर्श से वंचित है।

पुलिक : (हसकर) तुम्हारे व्यंगबाण से अधिक बेधक तो तुम्हारी आंखें हैं। वहां अंधकार में क्यों खड़ी हो। किंचित दीपा-धार के निकट आ जाओ।···नहीं। (अट्टहास) अच्छा न सही। व्याघ्रक! विश्वतारा को गर्भगृह में और··· श्रवणा को ऊपर पूर्वी प्रकोष्ठ में सादर पहुंचा आओ।

व्याघ्रक : जो आज्ञा। चलो।

श्रवणा . सावधान सैनिक, विश्वतारा को स्पर्श भी मत करना। मैं तक्षशिला की नारी हूं। मेरी यह हैति तुम्हारे प्राण हर लेने को पर्याप्त है।

पुलिक : (हंसकर) व्याघ्रक, आदरपूर्वक ले जाओ बलपूर्वक नहीं।

विश्व . (सिसकते हुए) श्रवणा!

श्रवणा · चिन्ता मत करो बहन! इन लोगों ने यदि तुम्हारी रंच-मात्र भी क्षति की तो महामात्य सहित मगध सिंहासन और राज्याधिकारियों को सदानीरा में डुबो देने की सामर्थ्य तुम्हारे भाई की भुजाओं में है।

पुलिक : (अट्टहास) अभी विचारा स्वयं ही डूब मरने को चुल्लू-भर पानी की खोज में भटक रहा होगा।

श्रवणा : चुल्लू-भर पानी नहीं, तृण काष्ठ एकत्र करने के लिए, ताकि तुम्हें जीवित जलाया जा सके। तुम्हारे पन्द्रह अश्वारोही उनका पीछा करते समाप्त हो गये और तुम्हें उनके पराक्रम का परिचय नहीं मिला। वे सभा में सब को धता बताकर चले गए और तुम निर्लज्ज की तरह हंस रहे हो। धिक्कार है तुम्हारे पौरुष पर।

पुलिक : व्याघ्रक भद्रिक, प्रतीहारी! ले जाओ इन दोनों को।

श्रवणा : कुछ और लोगों को बुला लो। दो नारियों को वन्दी बनाने के लिए ही सारा सैन्य बल एकत्र कर लोगे तो भट्टिय का मनोरजन कैसे करोगे, महामात्य ?

पुलिक : तुम पर अपना आधिपत्य स्थापित करके। (हंसी)

श्रवणा : इसके लिए तुम्हें अपना पद ही नहीं प्राण भी गंवाने पड़ेंगे।

पुलिक : वह तो आज ही विदित हो जायेगा। व्याध्रक, ले जाओ इन दोनों को।

[व्याध्रक और सैनिक उन्हें ले जाते है।]

पुलिक : (स्वगत) यह गर्व…परन्तु इतना अपार सौन्दर्य। (सांस) इस गर्वीली स्त्री का गर्व तोड़ना ही होगा। (हल्की हंसी)

व्याध्रक : (आकर) आर्य ब्राह्मण, उन्हें पहुंचा आया हूं।

पुलिक : (हूं) विश्वदेव को कारागार में डालकर उनका अन्तिम निर्णय कर दो। विश्वतारा एक प्रहर तक मूछितावस्था में पड़ी रहे ऐसी व्यवस्था करने के लिए राजवैद्य से निवेदन करो।

व्याध्रक : आर्यब्राह्मण ! औषधि का प्रबन्ध मैंने पहले ही कर लिया था। उसका प्रयोग भी कर दिया गया है। (हंसकर) देवी विश्वतारा पूर्णतया मूछित हैं।

पुलिक : साधु व्याध्रक…साधु देवी को एक गठरी में बांध कर ले आओ और अश्व प्रस्तुत करो। मैं स्वयं उसे भैरवाचार्य परमतांत्रिक पाताल विचर आचार्य वक्रघोष के पास पहुंचा आऊंगा जिससे वे लता साधन की सिद्धि के लिए अपने प्रयोग में सफल हो सकें।

व्याध्रक : जो आज्ञा।

पुलिक : ठहरो।…भट्टिय को वन्दी बनाने के लिए क्या प्रवन्ध किया गया ?

व्याध्रक : एक सहस्र अश्वारोही राज्य में चारों ओर निकल पड़े हैं। एक सहस्र पैदल सैनिक छद्मवेश में राज्य में फैल गये हैं।

पुलिक : ठीक है। और देखो…मैं रात्रि के तीसरे प्रहर तक लौट

आऊंगा। श्रवणा यहां से भागने न पावे।

व्याध्रक : आप निश्चिन्त रहें आर्य ब्राह्मण! इसका भी प्रवन्ध कर दिया गया है।

पुलिक : साधु! मैं बाहर चलता हूं। तुम विश्वतारा को गठरी में ले आओ और अश्व के पास मुझे मिलो।

व्याध्रक : जो आज्ञा।

[दोनों का प्रस्थान। कुछ क्षण मौन और फिर हल्की-सी तेज कदमों की आवाज।]

स्वर 1 : (स्वगत) सांस फूला हुआ है। एक प्रहरी को तो पार उतार दिया। अब साथियों को बुलाओ।

[सीटी बजाता है। दूर से सीटी की आवाजें आती है हल्की-सी। स्वर। फिर सीटी बजाता है और··· चार-पाच व्यक्तियों के पास आने की आवाज।]

स्वर 1 : धीमे से। सब प्रहरियों को समाप्त कर दिया। चार-पांच स्वर एक साथ जी हां·· जी हां कहते हैं।

स्वर 2 . नायक, मैं मुख्य द्वार पर था। वहां के प्रहरी से मैं यह जानने में सफल हुआ कि महामात्य एक बन्दिनी को गठरी में बांध अश्व पर भैरवाचार्य की सेवा में अर्पित करने गये है।

स्वर 1 : क्या?

स्वर 2 : हां नायक। और दूसरी बन्दिनी ऊपरी प्रकोष्ठ में है।

स्वर 1 : तो तुम ऊपरी प्रकोष्ठ में से देवी को सादर लिवा ले चलो। बाकी सबको मेरे साथ आम्रवन चलना है, दूसरी बन्दिनी को छुड़ाना है। मैं समझता हूं वे देवी विश्वतारा ही हैं। हमें शीघ्रता करनी चाहिए नहीं तो अनर्थ हो जायेगा। चलो। (पदचाप) और तुम भी अपना कार्य शीघ्रता से सम्पन्न करो।

स्वर 2. : जो आज्ञा।

[अन्तराल संगीत]

[कोलाहल, आग बुझाने की कोशिश, भागा-दौड़ी]

व्याध्रक : ऊपरी प्रकोष्ठ में आग की लपटें और फैलती जा रही है।

तुम लोग उधर पानी फेंको।

कुछ स्वर : जो आज्ञा। (भागते चले जाते हैं।)

पुलिक : तुमने प्रबन्ध तो बहुत सुन्दर किया व्याघ्रक ! शत्रु लोग महामात्य के घर में घुस आए। प्रहरियों का कुछ पता ही नहीं। वे लोग ऊपरी प्रकोष्ठ में आग लगाकर चले गए और किसी को इसका पता ही नहीं। सब सोए हुए थे क्या ? मेरा मुह क्या देख रहे हो ? आग बुझाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? सारे प्रासाद को नष्ट कराना है !

सेवक : महाराज ! सेनाध्यक्ष उपस्थित हैं !

सेनाध्यक्ष : (आते हुए) प्रणाम करता हूं महामात्य।

पुलिक : सेनापति ! नगर के सभी निपद्यओं, मदिरालयों, मन्दिरों और श्रेणिये, आर्यकुल और अनार्यकुल के गृहों का भी निरीक्षण किया जाय।

सेनाध्यक्ष : किन्तु महामात्य, एक बन्दी के भाग जाने के कारण नागरिकों को इतना कष्ट देना क्या उचित होगा ?

पुलिक : बन्दी, राज्य नियंत्रण से भाग निकले, यह साधारण बात है ! आर्य सेनाध्यक्ष, हमें राजद्रोहियों का सिर कुचलना ही होगा।

सेनाध्यक्ष : महामात्य, गिरिव्रज के सहस्रों गृहों में घुसकर एक स्त्री बन्दी को ढूंढना सुगम कार्य नहीं है। इस प्रकार युद्ध-स्थिति की सी घोषणा करने से आतंक फैल जाएगा, असन्तोष की लहर दौड़ जाएगी। हो सकता है विद्रोह की आग भड़क उठे।

पुलिक : कोई बात नहीं। मैं मगध का महामात्य और अवन्ति का शासक पुलिकसेन आदेश देता हूं कि नगर का कोना-कोना छान मारिए, नगर कोट के सब द्वारों पर पहरा लगवा दीजिए। पूरी तरह जांच-पड़ताल की जाय।

सेनाध्यक्ष : जो आज्ञा। (चला जाता है।)

सेवक : महाराज, एक कापालिक आचार्य वक्रघोष का सन्देश लाया है। कहता है कि कुछ दुष्टों ने आक्रमण करके आचार्य वक्रघोष को तथा कापालिकों को मारा पीटा है

और देवी विश्वतारा को वहां से उठा ले गए है ।

पुलिक : इन दुष्टों का यह साहस ! पहले मेरे प्रासाद से श्रवणा को ले गए और आग लगा दी। अब भैरवाचार्य के यहां से विश्वतारा को ले गए। इन विद्रोहियों को मैं ठीक कर दूंगा। किन्तु ये लोग कौन। श्रवणा और विश्वतारा के पीछे यदि मैं सैनिक भेजू भी तो उन्हें वे खोजेंगे कहां। व्याघ्रक, व्याघ्रक।

[सगीत]

श्रवणा हम यहां रुक क्यों गए है, वन्धु ?

स्वर 2 : हमारे नायक देवी विश्वतारा को लाने गए है, अभी आते ही होंगे। यही मिलना है हमें ।

[इतने मे दूर से घोड़ों के आने की आवाज]

स्वर 2 : वे आ गए वहन !

[सीटी वजाता है व जवाब में एक सीटी···और घोड़े पास आकर रुक जाते है।]

श्रवणा : विश्वा ! तुम सकुशल हो ?

विश्वतारा : वहन···वहन ! (सिसकती है।)

श्रवणा : रोओ मत वहन। इनको धन्यवाद दो कि उन्होने तुम्हे विपत्ति से बचाया। आप मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें वन्धु !

स्वर 1 : धन्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं देवी। यह तो हमारा कर्तव्य ही था। अब शीघ्रता करें नहीं तो···।

श्रवणा : चलो विश्वतारा !

विश्वतारा : ये हमें कहां लिए जा रहे है बहन ?

श्रवणा : ये हमें ऋषिगिरि पर्वत पर आचार्यपाद नारायण स्वामी के पास लिए चल रहे हैं। वहां कोई भय नहीं है वहन !

[कुछ क्षण मौन। इस बीच घोड़े धीरे-धीरे चलते रहते हैं।]

विश्वतारा : क्या सोच रही हो वहन ? भैया के संवंध में ही न ?

श्रवणा : हां विश्वतारा। न जाने वे कहां होंगे ? कहां भटकते फिरते होंगे ? (स्वगत) प्रिय तुम कहां हो ? तुम्हें क्या पता

कि यहां हमारी क्या दशा हो रही है ? प्रिय ! कहां हो प्रिय !

[संगीत]

हेमजित : मैं आचार्यपाद महाकुलीन नारायणस्वामी की आज्ञा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। धर्मयुद्ध की जय के निमित्त मैं अपना खड्ग आपके अधीन करता हूं। जय या पराजय ईश्वराधीन है।

औदुम्ब : उठो वत्स। जय या पराजय ईश्वराधीन होते हुए भी अनित्य है। यहां सब अनित्य है। नित्य है मात्र संस्कार परम्परा। अपने सस्कार अक्षुण्ण रखो। इसके लिए तुम्हें वीरोचित कर्तव्य का पालन करना होगा। जनपद कल्याणत्रयी अनुष्ठान एवं स्त्री सरक्षण के हेतु उद्घोषित युद्ध महान यज्ञ है। और जो यज्ञ है इसे निर्विघ्न सम्पन्न करना ही वीरोचित कर्तव्य है। उठो। खड्ग उठा कर संकल्प कररो कि मगध महाजनपद से अन्याय का उच्छेद करके ही नगर वास करोगे।

हेमजित : संकल्प करता हूं ब्राह्मण देवता !

औदुम्ब : भविष्य में यह यज्ञ बिना युद्ध के सहस्रों वर्ष चलता रहे, एकता का सूत्र सारे जम्बूद्वीप को सुदृढता से आबद्ध किए रहे, ऐसी व्यवस्था करने में तुम विश्वास एवं उत्साह के साथ मेरा निर्देशन स्वीकार करोगे। मेरा आचार्य औदुम्बरायण का।

हेमजित : आप···आचार्य औदुम्बरायण।···आप !!

औदुम्ब : हां वत्स ! मैं ही औदुम्बरायण हूं। वयस्य भूरिश्रवा ने तुम्हें मुझी से व्यवहार पक्ष की शिक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया था।

हेमजित : संकल्प करता हूं आचार्य !

औदुम्ब : साधु आयुष्मान। मेरे साथ आओ।

हेमजित : यह तो···यह तो रसायन शाला है। यह मृतवत श्वान सैकड़ों औषधि कुप्पियां, पशु चर्म, शुष्क पत्तियां···यह सब···!!!

औदुम्ब : यह सब उस युद्ध के लिए आवश्यक है वत्स जिसके तुम···
नायक हो ।

हेमजित : जी ।

औदुम्ब : हां वत्स । तुम्हारी भुजाओं में भावी भारतवर्ष की नींव रखने की शक्ति है । इसी कारण तुम्हारे आचार्य भूरिश्रवा और वयस्य नारायण स्वामी ने तुम्हें मेरे पास भजा है ।

हेमजित : मैं समझा नहीं आचार्य !

औदुम्ब : तुम्हे सूर्योदय से पूर्व यहां से प्रस्थान कर देना है । अंग की सीमा पर अराजकता फैली हुई है । वहां सैनिक, राजा से प्रेरित होकर मगध की सीमा में दस्युओं की तरह लूट-पाट मचा रहे है । प्रजा की चिन्ता किसी को नहीं । न पुलिकसेन को न मगध के राजा को । तुम्हें वहां पहुंच कर जल्दी से जल्दी व्यवस्था स्थापित करनी है ।

हेमजित · किन्तु मैं यह किस अधिकार से कर सकता हू ?

औदुम्व : प्रजापालक के अधिकार से । भविष्य-निर्माता के अधिकार से । राजा के कर्तव्यच्युत हो जाने पर प्रजा के नेता के अधिकार से । मगध को एक ऐसा नेता चाहिए जो देश में एकता स्थापित कर देश की शत्रुओं से रक्षा कर सके और प्रजा का दु ख दूर कर सके । तुमने जिस प्रतिभा, पराक्रम एवं त्याग का परिचय दिया है, उसी के कारण तुम्हारा देश तुम्हे नेता रूप में वरण करता है ।

हेमजित : आपकी जैसी आज्ञा आचार्य !

औदुम्ब : किन्तु वत्स ! इस कार्य के लिए तुम्हें अपनी अमूल्य से अमूल्य वस्तु का त्याग करना होगा ।

हेमजित : मैं प्रस्तुत हूं ।

औदुम्व : तुम्हें अपना निजत्व त्यागना होगा ।

हेमजित : वचन देता हूं ।

औदुम्ब : तुम्हें ममता-मोह के बन्धन से मुक्त हो जाना होगा ।

हेमजित : संकल्प करता हूं ।

औदुम्ब : साधु आयुष्मान । वासुदेव कृष्ण तुम्हें सफलता प्रदान करे । किन्तु तुम्हें कदाचित विदित नही होगा कि गिरिव्रज

छोड़ने के पश्चात् तुम्हारे परिवार के साथ क्या घटना घटी।

हेमजित : क्यों ? क्या हुआ ?

औदुम्ब : पुलिकसेन ने तुम्हारे पिता को कारागार में डाल कर उन्हें समाप्त कर दिया।

हेमजित : हैं···

औदुम्ब : तुम्हारी बहन विश्वतारा को वह चांडाल वक्रघोष की सेवा में रख आया और तुम्हारी पत्नी को···

हेमजित : आचार्य ! मैं अभी गिरिव्रज जाऊंगा। पुलिकसेन का रक्त पीकर ही मुझे कोई अन्य राह दिखाई देगी।

औदुम्ब : भट्टिय·· तुम कुछ नहीं कर सकते।

हेमजित · आचार्य !

औदुम्ब : हां। क्या भूल गए तुमने क्या संकल्प किया है ? जो अपना संकल्प इतना शीघ्र भूल सकता है, वह कुछ नहीं कर सकता।

हेमजित · किन्तु···किन्तु आचार्य माता-पिता, बहन और पत्नी के प्रति भी तो मेरा कुछ कर्तव्य है।

औदुम्ब : और देश के प्रति ?

हेमजित : सर्वोपरि।

औदुम्ब : फिर अधीर क्यों होते हो ? राजा और महामात्य की भोग की लिप्सा पर न जाने कितनी तरुणियों के कौमार्य का बलिदान हो चुका है। मगध फिर भी शान्त रहा। श्रवणा और विश्वतारा में मगध को देखो वत्स। इस घन से तो तुम्हारे संकल्प को बल मिलना चाहिए। (कुछ रुककर) अपने मन में आस्था जगा लो कि वयस्य नारायण स्वामी के रहते तुम्हारी बहन तथा पत्नी का कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता।

हेमजित : तो क्या मेरी बहन और···

औदुम्ब : सुरक्षित स्थान पर पहुंच गई हैं। किन्तु श्रवणा से तुम अब नहीं मिल सकते।

हेमजित : क्यों ?

औदुम्ब : क्योंकि श्रवणा ने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

हेमजित : आचार्य !

औदुम्ब : अधीर नहीं होते आयुष्मान। श्रवणा के सामने दूसरी राह नहीं थी। पुलिकसेन उसके सतीत्व के साथ खिलवाड़ करना चाहता था। उसे प्रकोष्ठ में डालकर वह विश्वतारा को लेकर भैरवाचार्य के पास गया था। श्रवणा कदाचित पुलिकसेन के मनोभाव समझ गई थी इसलिए उसने पुलिकसेन के लौटने से पहले ही प्रकोष्ठ में जलते हुए दीप से अपनी देह फूंक कर राख कर दी। वह अमर हो गई।

हेमजित : (कुछ देर मौन के बाद गम्भीर) आपके चरणों की साक्षी रख कर मैं मृत श्रवणा की सौगन्ध खाता हूं, मैं मगध महा-जनपद की सौगन्ध खाता हूं, अपने गुरू की सौगन्ध खाता हूं कि मैं पुलिकसेन सहित वाहद्रथ वश का उच्छेद कर दूंगा। मगध के अपवित्र आर्यपट्ट की कभी वन्दना नहीं करूंगा। आपकी आज्ञानुसार मैं जा रहा हूं और राज्य की सीमा पर चम्पारण्य में।

औदुम्ब : तुम वहां कृष्ण दस्यु के नाम से जाने जाओगे।

[संगीत]

चन्द्रवाला : (स्वगत पीड़ा युक्त स्वर) यह मैं कहां हूं। यह तो कोई झोंपड़ी है। यहां मैं कैसे आ गई। मैं अग की राजकुमारी। मैं तो आखेट के लिए निकली थी। हा एक हिरण का पीछा करते-करते सब अंगरक्षक पीछे रह गए थे…और…और अन्धकार छा गया था…! वह…वह सिंह…आह मेरे दाहिने हाथ को क्या… सिंह की चपेट में आ गया। कदा-चित सन्धान करने में चूक गई थी। किन्तु इस कुटीर में कैसे आ पहुंची? और मेरे कन्धे से यह नीचे तक पट्टियां किसने बांधी। मेरी प्राण-रक्षा किसने की…

[बाहर से पदचाप की ध्वनि]

हेमजित : अब पीड़ा कैसी है।

चन्द्रवाला : हाथ हिलाने पर बहुत होती है, वैसे ठीक है।

हेमजित : कोई बात नहीं, तीन-चार दिन में ठीक हो जाएगी।

चन्द्रबाला : तीन-चार दिन। इतने दिन इस प्रकार यहां कैसे पड़ी रहूंगी ?

हेमजित : (रुककर) वनराज तो···वनराज तो सामने बैठे हैं।

चन्द्रबाला : यहां वनराज का कोई भय नहीं।

हेमजित : जी !

चन्द्रबाला : वनराज से मेरी रक्षा आप ही ने···। आप तो···आप मेरे प्राणदाता हैं। यदि आप समय पर नहीं पहुंचते तो किसी को पता भी नहीं चलता कि मेरा अन्त किस प्रकार हुआ।

हेमजित : मेरे विचार में आपके पिता निश्चय ही बहुत क्रूर होंगे।

चन्द्रबाला : क्या ?

हेमजित : उन्होंने आपको अकेले आखेट के लिए इतने बीहड़ वन में आने दिया, यह क्रूरता नहो तो और क्या है ?

चन्द्रबाला : आप जानते हैं मेरे पिता कौन हैं ?

हेमजित : आपकी वेशभूषा से तो लगता है कोई सामन्त होंगे।

चन्द्रबाला : सामन्त नहीं···सम्राट। अंग के सम्राट महाराज दधि-वाहन।

हेमजित : अच्छा। लीजिए···यह औषधि पी लीजिए। अब यह हाथ हटा लीजिए, पट्टी खोलकर घाव पर औषधि लगा दूं।

चन्द्रबाला : आप पट्टी खोलेंगे ?

हेमजित : तो और कौन बैठा है यहां ?

चन्द्रबाला : तो मेरे कन्धे से लेकर कमर तक यह पट्टी आपने बांधी थी ?···हे राम ! आपको संकोच नहीं हुआ !

हेमजित : इसमें संकोच की क्या बात है ? इस समय आप रोगिणी और मैं वैद्य। अब समय नष्ट मत कीजिए।···

[चन्द्रबाला एक-दो बार कराह उठती है।]

क्या कष्ट बढ़ तो नहीं गया ?

चन्द्रबाला : नहीं···नहीं (जैसे दर्द के साथ ही प्रसन्नता भी हो।)

हेमजित : अब आप थोड़ा दूध पीकर सो जाइए। यह लीजिए दूध। मैं चलता हूं।

[प्रस्थान]

चन्द्रबाला : वैद्य ! थोड़ा हंसती है। प्राणदाता ! हे राम !

समय पर आ पहुंचा सुमंगली चन्द्रबाला ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी।

चन्द्रबाला : सुमंगली !···मैं अभी कन्या हूं मुनिवर !

औदुम्ब : जानता हूं। तुमने मन ही मन इस तरुण का वरण किया है न। इसी से मैंने तुम्हें सुमंगली कहा। सामाजिक मान्यता का विधान अभी पूरा नहीं हुआ। इससे मैंने कहा कि तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। किन्तु तुम्हें एक संकल्प करना होगा।

चन्द्रबाला : मैं प्रस्तुत हूं आचार्य प्रवर !

औदुम्ब : संकल्प करो कि इस तरुण की किसी से चर्चा नहीं करोगी। अपने प्रेम को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करोगी।

चन्द्रबाला : ऐसा ही होगा आचार्य ! किन्तु कब तक ?

औदुम्ब : समय का निश्चय समय ही कर सकता है। वैसे जब तक मेरा आदेश न मिले।

चन्द्रबाला : मैं संकल्प करती हूं।

औदुम्ब : साधु सुमंगली ! मैं भारद्वाज गोत्र का महाकुलीन आदित्य ब्राह्मण औदुम्बरायण पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित होकर तुम दोनों का उपयमन संस्कार सम्पन्न कराऊंगा।

हेमजित : किन्तु आचार्य···

औदुम्ब : किन्तु परन्तु कुछ नहीं। तुम्हारे धर्मयुद्ध के उपयुक्त ही यह विधान है। कल ब्रह्ममुहूर्त में तुम्हारा उपयमन संस्कार होगा। नौ दिन तुम दोनों साथ रह सकते हो। दसवें दिन तुम्हें चम्पा जाना होगा। मेरी भविष्यवाणी है कि तुम्हारा सार्वभौम सम्राट के पद पर अभिषेक होगा।

[संगीत। दूर से हल्का शोर उभरता है।]

पुलिक : व्याघ्रक। क्षेत्र के चारों ओर कड़ा पहरा है न ?

व्याघ्रक : जी श्रीमान !

पुलिक : साधु। सेनापति स्वस्ति सेन। भैरवाचार्य वज्रघोष पधार गए हैं।

स्वस्तिसेन : जी हां श्रीमान।

पुलिक : क्या योजना है ?

[फिर थोड़ा हंसती है और उसके बाद एक लम्बी सांस जिसके साथ ही संगीत उभर आता है। अंतराल संगीत के आउट होते ही।]

चन्द्रबाला : (जैसे पूछते-पूछते थक गई हो। लम्बी सास के साथ) तुम मुझे अपना परिचय क्यों नही देते ?

हेमजित : (हसते हुए) परिचय जान के क्या करोगी ? मैं विधुर मायावर हूं। राजयोग में जन्म लेकर भिक्षुक बना हुआ हूं। सारे वैभव होने पर भी दरिद्र का जीवन बिता रहा हूं। क्या सोच रही हो ?

चन्द्रबाला : यहां से ''यहां से जाने को जी नही चाहता।

हेमजित : किन्तु जाना तो होगा ही। मैंने तुम्हें घोर विपत्ति में डाल दिया न। मैं बहुत लज्जित हूं चन्दा।'''

चन्द्रबाला : नही-नही, ऐसा मत कहो। तुम मेरे प्राणदेवता हो। तुमने मुझे सत्य ही जीवनदान दिया है।

हेमजित : ऐसा जीवन भी क्या ? उधर तुम दुखी होगी, इधर मैं आकुल रहूंगा।

चन्द्रबाला : तो मेरे पिता के पास चलो न। यहां चम्पारण में क्या धरा है ?

हेमजित . मेरा सकल्प, मेरी गुरु दक्षिणा, मेरा देश और मेरा धर्म, इसी वन में है।

चन्द्रबाला : तुम बड़े निष्ठुर हो। मैं तुम्हारे बिना कही नही जाऊंगी।

हेमजित : नही चन्दा ! चम्पा का धवलगृह ही तुम्हारे योग्य है। विधि का यही विधान है कि हम मिलकर भी न मिल पाएं।

चन्द्रबाला : तो क्या तुम मुझे मिलोगे भी नहीं ?

हेमजित : उससे क्या लाभ होगा भला ? दुख ही तो बढ़ेगा।

चन्द्रबाला : नहीं-नही, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी नही छोड़ूंगी।'''क्या हम इस जन्म में कभी एक नही हो सकते।

औदुम्ब : (कुटिया के भीतर आते हुए) क्यों नही हो सकते ?

हेमजित : आचार्य ! आप !

औदुम्ब : हां वत्स, मेरी गणना मिथ्या नहीं हो सकती। मैं ठीक

समय पर आ पहुंचा सुमंगली चन्द्रवाला ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी।

चन्द्रवाला : सुमंगली !···मैं अभी कन्या हूं मुनिवर !

औदुम्व : जानता हू। तुमने मन ही मन इस तरुण का वरण किया है न। इसी से मैंने तुम्हें सुमंगली कहा। सामाजिक मान्यता का विधान अभी पूरा नहीं हुआ। इससे मैंने कहा कि तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। किन्तु तुम्हें एक संकल्प करना होगा।

चन्द्रवाला : मैं प्रस्तुत हू आचार्य प्रवर !

औदुम्व : संकल्प करो कि इस तरुण की किसी से चर्चा नहीं करोगी। अपने प्रेम को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करोगी।

चन्द्रवाला : ऐसा ही होगा आचार्य ! किन्तु कब तक ?

औदुम्व : समय का निश्चय समय ही कर सकता है। वैसे जब तक मेरा आदेश न मिले।

चन्द्रवाला : मैं सकल्प करती हूं।

औदुम्व : साधु सुमगली ! मैं भारद्वाज गोत्र का महाकुलीन आदित्य ब्राह्मण औदुम्बरायण पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित होकर तुम दोनों का उपयमन संस्कार सम्पन्न कराऊंगा।

हेमजित : किन्तु आचार्य···

औदुम्व : किन्तु परन्तु कुछ नहीं। तुम्हारे धर्मयुद्ध के उपयुक्त ही यह विधान है। कल ब्रह्ममुहूर्त में तुम्हारा उपयमन संस्कार होगा। नौ दिन तुम दोनों साथ रह सकते हो। दसवें दिन तुम्हें चम्पा जाना होगा। मेरी भविष्यवाणी है कि तुम्हारा सार्वभौम सम्राट के पद पर अभिषेक होगा।

[संगीत। दूर से हल्का शोर उभरता है।]

पुलिक : व्याध्रक। क्षेत्र के चारों ओर कड़ा पहरा है न ?

व्याध्रक : जी श्रीमान !

पुलिक : साधु। सेनापति स्वस्ति सेन। भैरवाचार्य वज्रघोष पधार गए हैं।

स्वस्तिसेन : जी हां श्रीमान।

पुलिक : क्या योजना है ?

स्वस्तिसेन : सामन्तों के साथ हम लोग मंत्रणा कर लें। भैरवाचार्य बाद में पधारेंगे। उनकी इच्छा है कि सामन्तों को आभास तक न मिले कि वे आने वाले हैं।

पुलिक : उत्तम योजना है। नाटकीय प्रभाव पड़ेगा। चलो अब कार्य आरम्भ करें।

[शोर अप और उसी में से 'महामात्य आ गए।' 'आइए' 'पधारिए' आदि।]

पुलिक : सामन्त गण। सुनें। एक अति आवश्यक विषय पर आपके निर्णय के लिए आप सबको कष्ट दिया गया है। सामन्त गण। मगध महाजनपद की प्राचीन परम्परा लुप्त हो चुकी है। धर्माचरण असंभव हो गया है। शुल्क एवं कर से भरा गया राजकोष राजा की मनमानी इच्छा पर रिक्त किया जा रहा है। प्रजा अनाथ जैसी हो गई है। डाकुओं, लुटेरों और देवी प्रकोप की पीड़ा से आतंकित है। अब न किसी की प्रतिष्ठा सुरक्षित है न प्राण। मैं क्या करूं! राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। आज मैं निश्चय करके आया हूं कि आपको स्थिति से अवगत करा कर यहीं से उज्जैन चला जाऊंगा।

[क्षण-भर चुप्पी रहती है, फिर हल्का शोर।]

सामन्त 1 : क्यों न हम सब मिल कर राजा को सिंहासन से हटा दें?

[सब चुप हो जाते हैं।]

सामन्त 2 : हां। हमें ऐसा ही करना चाहिए। राजा अपने कर्तव्य पथ से विरत हो गया है। राजा दंड से परे नहीं है, उसे दंड मिलना चाहिए।

पुलिक : ऐसा आप तभी कर सकेंगे, जब मै अपना पद त्याग कर शासन-कार्य से हट जाऊंगा।

सामन्त : नहीं-नहीं, ऐसा नही हो सकता। आपको अपने पद पर बने रहना होगा।

स्वस्तिसेन : क्यों न हम अवन्ति की अस्सी सहस्र सेना से गिरिव्रज पर आक्रमण कर दें और राजा का···

पुलिक : नहीं सेनापति, मैं पहले मगध हूं फिर कुछ और। यह तो

पराधीनता को आमन्त्रित करने के बराबर है।

सामन्त 1 : तो फिर आप ही मार्ग दिखाइए।

पुलिक : मैं उज्जैन चला जाता हूं। सेनापति स्वस्तिसेन आप लोगों की सहायता करेंगे। आप अपने में से किसी को राजा निर्वाचित कर लीजिए और सिंहासन पर अधिकार कर लीजिए।

सामन्त 2 : (खुश होते हुए) यह तो ठीक है किन्तु निर्वाचन किस आधार पर हो ?

सामन्त 3 : कुल-परम्परा के आधार पर।

सामन्त 1 : नहीं, आधिपत्य के आधार पर।

सामन्त 2 : पराक्रम के आधार पर।

सामन्त 3 : नहीं गुण के…

भैरवाचार्य : तुम सब अन्धे हो। (अचम्भे में सब प्रणाम करते हैं।) मैं मात्र यह कहने आया हूं। सामन्तों ने अभी जो बातें बताईं वे सभी एक ही व्यक्ति में विद्यमान हैं।

कई स्वर : कौन है वह ?

भैरवाचार्य : महामात्य पुलिक सेन (सन्नाटा)

सामन्त 3 : भैरवाचार्य की वाणी उपयुक्त है।

भैरवा : मूढ़ क्या देखता है। अनुरोध कर महामात्य से अन्यथा नरक में पड़ेगा। आद्या का प्रकोप मगध को स्वाहा कर देगा।

सभी स्वर : हम सब प्रस्तुत हैं।

पुलिक : किन्तु मैं प्रस्तुत नहीं हूं। भैरवाचार्य मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैं राजद्रोह नहीं करूंगा।

भैरवा : तुझे सिंहासन पर बैठने को कौन कहता है! सिंहासन पर बैठेगा कुमारसेन महामात्य पुलिकसेन का प्रतापी पुत्र।

सब सामान्त : उचित है। उचित है। ठीक है।

पुलिक : भैरवाचार्य का आदेश सर्वोपरि है। आप लोग संकेत मिलते ही गिरिव्रज पहुंच जाएं। कुमार सेन के अभिषिक्त होने पर जनपद का वास्तविक शासन तो आपके हाथ में ही होगा। वैसे आपके पास जितने ग्राम हैं उतने ग्राम और

आपके अधीन कर दिए जायेंगे और आप सवको परिवार का सदस्य भी निर्वाचित किया जायेगा।

सव स्वर : 'ठीक है', 'उचित है', 'हमें स्वीकार है'

[संगीत]

[नृत्य संगीत में बदल जाता है और सुन्दर साधु इत्यादि के साथ ही समाप्त होता है। यह सव दूर से है, इसके बाद नूपुरी की रुन्न-झुन्न पास आती है और···]

श्रवणा : कव से वैठे हो। परिचारिका ने अभी सूचना दी कि प्रतिदिन के मात्र अतिथि प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वरुणदेव : अभी थोडी देर पहले ही आया था देवि! जल्दी जाना है। कोई नई सूचना।

श्रवणा : अनर्थ होने वाला है।

वरुण : क्या ?

श्रवणा : पुलिकसेन के एक अनुचर ने ज्योतिपी का रूप धारण करके महाराज को पाठ पढ़ा दिया है कि वे वसुमित्रा से राक्षस विवाह करके पुत्र प्राप्त कर सकते है।

वरुण : रक्त की नदिया वहा दूंगा। रिपुजय का शिरोच्छेदन करके मगध जनपद से···

श्रवणा : धीरज मागध वीर, धीरज, अभी समय नही आया।

वरुण : मुझे इसकी चिन्ता नही। किसी की आज्ञा या अनुमति अव···

श्रवणा : गुरुदेव को सूचित करना भी आवश्यक नहीं समझते ?

वरुण : (विराम) हा देवि! उन्हे सूचित कर दूगा और यदि पिता और वहन का ऋण चुकाने में गुरु का ऋण बाधक हुआ तो अपने प्राणो की आहुति दे दूगा। किन्तु जीते जी अपनी अवोध वहन को उस नरपिशाच के हाथों···हां स्मरण आया। गुरुदेव का आदेश है कि दो दिन के भीतर आप राजमुद्रिका उनके पास भिजवा दे।

श्रवणा : यह लो। महाराज ने स्वयं मुझे अर्पित कर दी है।

वरुण : देवी सचमुच अन्तर्यामी है।

श्रवणा : धन्यवाद बन्धु ! किन्तु यह न भूलना कि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही मैं वर्षों से इस मार्ग पर चल रही हूं। अग्नि-परीक्षा के समय साक्षी रहना।

वरुण : वह तो हो चुकी देवी !

श्रवणा : किन्तु राम के समक्ष नहीं। (विराम)

वरुण : और कोई आज्ञा देवि !

श्रवणा : हूं। हां। गुरुदेव से कहना, महामात्य पुलिकसेन सामन्तों, सभासदों आदि की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करने की योजना में सफल होता जा रहा है। एक गुप्त मंत्रणा में वक्रघोप की नाटकीय चाल से प्रभावित होकर सबने रिपुंजय को समाप्त करने और पुलिकसेन के पुत्र कुमार-सेन को मगध आर्यपद पर अभिषिक्त करने का निश्चय कर लिया है। जनता में भी उपयुक्त वातावरण उत्पन्न किया जा रहा है।

वरुण : अच्छा देवि। वैसे इस सम्बन्ध में कुछ सूचना हमें भी प्राप्त हो चुकी है। अब मैं चलता हूं।

श्रवणा : अच्छा बन्धु।

वरुण : प्रणाम देवि। (चला जाता है।)

[अन्तराल सगीत]

नारायण : देवि कुवलया ने और कुछ तो नहीं कहा ?

वरुण : नहीं गुरुदेव।

औदुम्ब : वरुण देव ! तुम्हें ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व चम्पारण्य प्रस्थान कर देना है।

वरुण : किन्तु आचार्य···यहां रिपुंजय को···

औदुम्ब : किन्तु परन्तु सुनने का मैं अभ्यस्त नहीं हूं कुमार ! चिन्ताएं मुझ पर छोड़ दो। अभी बाहुबल नहीं नीति-बल की आवश्यकता है। विष विष से ही दूर होगा। देश के उद्धार के लिए अनुशासन चाहिए।

नारायण : वयस्य औदुम्बरायण ठीक कहते है वरुणदेव ! अभी प्रश्न एक का नहीं अनेक का है। इस समय आस्था, विश्वास और त्याग की आवश्यकता है।

वरुण : आज्ञा कीजिए गुरु व !

औदुम्ब : तुम्हें चम्पारण्य जाकर भट्टिय हेमजित के स्थान पर कृष्ण दस्यु का रूप धारण करना है और भट्टिय को अवन्ति पहुंचकर वहां आतंक फैला देना है।

वरुण . जैसी आज्ञा।

औदुम्ब . मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि वसुमित्रा का कुछ अनिष्ट नही होगा। वसुमित्रा के साथ विवाह के उद्यम में ही रिपुजय काल का ग्रास होगा। तुम आश्वस्त रहो। अब तुम जाओ।

वरुण : जो आज्ञा।

औदुम्ब . एक अनुलंघनीय आदेश और है। चम्पारण्य पहुंचकर कुवलया के भूत वर्तमान को भूल जाना। उसका नाम भी मुख पर नही आना चाहिए। स्मरण रखो कि भट्टिय के लिए श्रद्धणा जल चुकी है।

वरुण . ऐसा ही होगा आचार्य। प्रणाम करता हूं। प्रणाम गुरुदेव !

नारायण · आयुष्मान भवः।

औदुम्ब : कार्य में सफलता प्राप्त करो। (वरुणदेव जाता है। विराम)

नारायण : वयस्य औदुम्बरायण, कार्यक्रम क्या है ?

औदुम्ब · ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी कि राजा की हत्या स्वयं पुलिकसेन करे। इससे हमारा अभीष्ट सुगमता से प्राप्त हो जाएगा। पुलिकसेन को निर्मूल करने में प्रजा की निष्ठा हमारे साथ होगी। और इसके लिए हमें सर्वप्रथम भैरवाचार्य वक्रघोष का आतंक समाप्त करना है। यह कार्य कल ही आरम्भ हो जाएगा। अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिए।

[संगीत। दो घोड़ों की टापें उभरती है और घोड़े की टाप चलती रहती है।]

पुलिक : व्याध्रक, यह तो बहुत ही बुरा हुआ।

व्याध्रक : हा महाराज। आचार्य शैवलिक विचित्र व्यक्ति है। भैरवाचार्य की सब दवाओं का प्रभाव जाता रहा है। आचार्य शैवलिक ने स्वयं जाकर उन कूपों में कोई औषधि डाली है जिनमें हमने वक्रघोष के आदेश पर दवा डाली

थी। हमारे भरसक प्रयत्न करने पर भी अब वक्रघोप की औपधि का आतंक नहीं फैलता। महाराज आचार्य शैवलिक के आने से जैसे सारे नगर में जीवनदायिनी आशा की लहर दौड़ गई है। क्या सामन्त, क्या नागरिक, श्रेष्ठि अथवा कर्मकार, जिसे देखो आचार्य शैवलिक के एकाशालिक की ओर भागा चला जा रहा है।

पुलिक : हूं। ऐसे महान आचार्य से तो मिलना अत्यन्त आवश्यक है। व्याधक तुम यहीं ठहरो। मैं भीतर जाकर देख आऊं कि आचार्य कितने गहरे पानी में हैं।

[घोड़े से उतरना। फाटक की खुलने की आवाज।]

औदम्ब : (कुछ दूरी से जैसे कमरे के अन्दर हों) पधारिए मगध महामात्य पुलिकसेन।

पुलिक : (स्वगत) घोड़े की टाप से ही इन्हें कैसे ज्ञात हो गया कि मैं आया हूं।···हूं, अवश्य किसी ने सूचित कर दिया होगा ···किन्तु···इतनी शीघ्रता से···!

औदुम्ब : (अन्दर से ही) आप ठीक सोच रहे हैं महामात्य। इतनी शीघ्रता से मुझ तक सूचना पहुंचना असंभव है। पधारिए, आश्चर्य को त्यागिए। आइए। उस आसन पर बैठ जाइए। अब ठीक है।···महामात्य, आपका मेरे पास *आना तो अनिवार्य था ही। किन्तु रात्रि के गहन अन्धकार* में···आपको ज्ञात है···सूर्यास्त के पश्चात मेरे यहां आना वर्जित है। किन्तु आप तो दिन में नहीं आ सकते। प्रजा का क्रन्दन सुनने की सामर्थ्य आप में नहीं है।·· पुलिकसेन···रात्रि में आप योजना बनाते हैं, उसका परिणाम आपके समक्ष है। प्रकृति का विधान है कि रात्रि के पश्चात दिन आता है···और वह दिन अब दूर नहीं जब आपकी योजना के पन्ने, प्रकाश की किरणों के समक्ष उड़ने लगेंगे,···तब योजना का समापन आपको स्वयं करना होगा।···मेरा आशय स्पष्ट नहीं हुआ। हूं हूं हूं हूं ···मेरा दुर्भाग्य। कहिए मैं आपका क्या उपकार कर सकता हूं?

पुलिक : मैं…मैं…मैं तो…मात्र दर्शनों के लिए आया हूं।

औदुम्ब : (मुंह जैसे दूसरी ओर करते हुए) तो दर्शन तो हो चुके इसलिए जा सकते हैं।

पुलिक : किन्तु…

औदुम्ब : किन्तु क्या ?

पुलिक : मुझे लगता है आपको मेरे बारे में भ्रम है…उसका निवारण…

औदुम्ब : समय करेगा महामात्य। आपको मेरा परामर्श है कि समय का लाभ उठाइए।

पुलिक : परामर्श शिरोधार्य है। ''किन्तु किस प्रकार ?

औदुम्ब : कर्तव्य करके। योजना बनाने वाला यदि स्वयं ही उसे कार्यरूप दे तो समय उसके गले में सफलता की माला डाल देता है।

पुलिक : अपना आशय और स्पष्ट करने की कृपा कीजिए। मुझे क्या करना चाहिए ?

औदुम्ब : (हल्की हंसी) आपको क्या करना चाहिए मैं क्या जानू ? किन्तु नीति यह है कि जो करणीय है स्वयं करना चाहिए। तभी योजना का सुफल भी प्राप्त होता है। और ज्योतिष गणना के अनुसार भी, महामात्य सावधान, सामर्थ्य प्रदर्शित करने का सुयश किसी अन्य को न मिलने पाए, सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

पुलिक : अनुगृहीत हुआ आचार्य। आज से आपका आदेश मेरा धर्म हुआ।

औदुम्ब : मेरा आदेश तुम्हें प्राप्त होता रहेगा। अभी तो उचित वातावरण उत्पन्न करने के लिए किसी को भी राज्य प्रश्रय दिया जाना बन्द कर दो, राज्य कर से किसी को भी मुक्त मत रखो और अनार्य सेना को प्रोत्साहन दो।

पुलिक : जो आज्ञा। किन्तु आचार्य, मैं उचित वातावरण उत्पन्न करने का ही तो प्रयत्न कर रहा था कि आपकी औषधि के चमत्कार से…

औदुम्ब : उससे कुछ नहीं होगा। कर का बोझ दुगना कर दो, धवल-

गृह के लिए अच्छे कुल की प्रजावती दासियों का प्रबंध करो, समाज भोज को प्रोत्साहन दो, सैनिकों को स्वच्छन्द कर दो···किन्तु सब कुछ राजा के नाम पर। करणीय तुम स्वयं करो किन्तु कहो यह कि यह राजा कहता है, यह राजा चाहता है। फिर देखो पन्द्रह दिन में क्या से क्या हो जाता है।

पुलिक : जी···जी···, (हंसता है और हसी संगीत में डूब जाती है।)

व्याघ्रक : (आते हुए) महिष्मती से सन्देशवाहक आया है। स्वामी के दर्शन करना चाहता है।

पुलिक : उसे ले आओ।

व्याघ्रक : जो आज्ञा ! (जाता है)

पुलिक : कहीं कुछ बाधा तो नहीं उठ खड़ी हुई ! सेनापति स्वस्तिसेन का अभियान···

संदेशवाहक : (आते हुए सांस अभी कुछ फूला हुआ है) प्रणाम करता हूं आर्यब्राह्मण !

पुलिक : सेनापति स्वस्तिसेन सकुशल तो है ?

संदेशवाहक : वे तो परमशक्तिवान भगवान शिव की कृपा से ही सकुशल पहुंच पाए हैं। उन्होंने निवेदन किया है कि गिरिव्रज से महिष्मती पहुंचते-पहुचते बीस सहस्र सैनिक रोग, व्याधि एवं दस्युराज भट्टिय के ग्रास बन गए।

पुलिक : क्या कहते हो संदेशवाहक !

संदेशवाहक : सत्य ही स्वामी। दस्युराज अन्य कोई नही स्वयं भट्टिय हेमजित हैं।

पुलिक : किन्तु मैंने तो सुना था कि वह चम्पारण्य में है।

संदेशवाहक : इन दिनों नर्मदा की घाटी में हैं स्वामी···सेनापति ने कहा है कि जो सैनिक बचे हैं वे पूर्णतया असमर्थ हो गए हैं और उन्हें संगठित करने में बहुत समय लगेगा।

पुलिक : अच्छा। तुम जाओ विश्राम करो।

संदेशवाहक : प्रणाम महाराज ! (जाता है)

पुलिक : (स्वगत) इतना महान सैन्यबल नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अब मैं किसके आधार पर अपनी योजना को सफल होते···

आचार्य सैंधलिक के पास चलना चाहिए···

[संगीत]

औदुम्ब . भीतर आ जाओ महामात्य·· बहुत चिन्तित हो। (हंसकर)

पुलिक : आचार्य ! महिष्मती के मार्ग पर स्वस्तिसेन के सेनापतित्व में बीस सहस्र सैनिक रोग, व्याधि तथा उस दुष्ट भट्टिय के ग्रास बन गए।···

औदुम्ब : (स्वगत) तो मेरा संदेशवाहक मार्ग में कूपों में औषधि डालने में सफल रहा और उसने समय पर हेमजित को सूचित भी कर दिया। चलो अभियान का एक और चरण सम्पन्न हुआ।

पुलिक : आप मौन क्यों हैं आचार्य ?

औदुम्ब : मैं सोच रहा था कि मेरी गणना सत्य ही निकली।

पुलिक : क्या आप पूर्व से ही जानते थे ?

औदुम्ब · हां।

पुलिक : कैसे ?

औदुम्ब राजनीति मे जिज्ञासा, सेवक तथा सहयोगी से की जाती है, स्वामी तथा आचार्य से नही।

पुलिक क्षमा कीजिए आचार्य। किन्तु आपने मुझ से कहा क्यों नही ?

औदुम्ब : तुम्हे शिक्षा देने के लिए। संकल्प करके तुमने मुझे आचार्य माना। फिर भी इस संबंध मे तुमने मेरी अनुमति नही मागी और न ही मुझसे परामर्श किया।

पुलिक : मुझे क्षमा कीजिए आचार्य। आज से आपकी अनुमति बिना मैं एक पग भी नही उठाऊंगा। मुझे मार्ग सुझाइए आचार्य। सैन्यबल गंवाकर मैं तो निर्वीर हो गया। अब निश्चित मार्ग का निर्देशन कीजिए·· अन्यथा मैं पागल हो जाऊंगा।

औदुम्ब : (हंसकर) पुलिकसेन ! इतनी विशाल योजना का समारंभ करके इतनी अधीरता और इतनी चिन्ता ! जो सैन्यबल समाप्त हो गया वह मगध का नही अवन्ति का था। विदेशी था। उसके भ्रम में तुम पतन की ओर जा रहे थे।

विदेशी सैन्यवल तुम्हारे लिए ऐसा वरदान वन जाता जो तुम्हें भस्मासुर की दशा को पहुंचा देता। यह तो वहुत ही उत्तम हुआ कि ऐसी घटना घटी। इसी से तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा का शिलान्यास हुआ है…

पुलिक : आचार्य…

औदुम्ब : (हंसकर) फिर वही अधीरता ! (फिर हंसता है) लो, निश्चित मार्ग वताता हूं। सुनो…

[अचानक ही संगीत उभर कर शेष शब्दों को जैसे डुवा देता है। उसी में से नक्कारे की आवाज उभरती है।]

उद्घोषक : सुनो ! सुनो !! सुनो !!! आज सायंकाल धवलगृह के दक्षिणी उद्यान में समाजोत्सव होगा। महाराज, नवीन पट्टमहिषी के साथ समज्या में पधारने की कृपा करेंगे। गिरिव्रज के नागरिक, राजनिमंत्रण के अधीन समज्या में सम्मिलित हों। सायंकाल होते ही प्रत्येक कुटीर भवन तथा अट्टालिका पर दीपोत्सव किया जाये।

[नक्कारा उभर आता है और कोलाहल में विलीन हो जाता है।]

नागरिक 1 : (धीमे से) अंधेरे की भी कोई सीमा होती है, स्थिति असह्य हो उठी है वन्धु ! परम्परा तथा मर्यादा का तो जैसे उत्स ही सूख गया हो।

नागरिक 2 : परम्परा के नाम पर ही तो अनाचार, अन्याय और अधर्म का साम्राज्य स्थापित किया जा रहा है।

तीसरा : वन्धु कोई समय था कि इस प्रकार क्षत्रिय जाति का अपमान करने का कोई साहस नही कर सकता था… किन्तु अव…

पहला : चन्द्रमित्र की कन्या वसुमित्रा के अपहरण की इस प्रकार योजना वनाई जाए। उफ मेरा तो यह वात सोचते ही दिल दहल उठता है। मेरी तो इच्छा होती है कि…

दूसरा : तुम कुछ नहीं कर सकते वन्धु ! मगध के नागरिक जैसे सामर्थ्यहीन हो गए हैं…चलो आचार्य दौवलिक के पास

चलें…वे ही शायद…

तीसरा : मैं अभी वहीं से आ रहा हूं। उनको भविष्यवाणी है कि समज्या में सम्मिलित होकर भी वसुमित्रा कन्या ही रहेगी।

पहला : क्या! असम्भव!! किन्तु…

दूसरा : चलो, देखें तो…

[कोलाहल उभर आता है और फिर…]

नागरिक 2 : वन्धु इतनी मैरेय, अपने दहलते जी को ठीक करने के लिए पी रहे हो।

पहला : (थोड़ा नशे में) तुम्हारा क्षोभ तो कापिशायिनी सुरा में डूबता प्रतीत हो रहा है…लो थोड़ा भुना मांस लो… क्षोभ को सांस लेने का अवसर मिलेगा। (हंसता है)

तीसरा : श-श…महाराज रिपुजय के साथ पट्टमहिषी पधार रही है।

[वातावरण जयघोष से गूंज उठता है।]

घोषा : नागरिक जन सुनें। आज की असाधारण सन्ध्या का असाधारण रीति से आवाहन किया जाएगा। आज प्रसन्नता का पर्व है। इसे सब प्रसन्ना पीकर मनाएं। मैं स्वयं भी पीऊंगी…महाराज को भी पिलाऊंगी और सबके समक्ष सान्ध्य नृत्य प्रस्तुत करूंगी। (सन्नाटा)

तीसरा : (धीमे से) पट्टमहिषी सबके समक्ष नृत्य करेगी! यह तो राजकुल मर्यादा का खण्डन है।

पहला : अरे वन्धु! इसमें क्या आश्चर्य है। आज तो जो देखना पड़े कम है। अब देवी वसुमित्रा को ही लो। मेरा अर्थ पट्टमहिषी से है। वे वसुमित्रा तो लगती नहीं।

[नृत्य संगीत और नूपुरों की ध्वनि आरम्भ हो चुकी है।]

दूसरा : बन्धु, यह तो नर्तकी घोषा है?

तीसरा : क्या? विषकन्या? तुम कैसे जानते हो?

दूसरा : अरे मैं कई बार गया हूं। यह नृत्य कई बार देख चुका हूं। (हंसता है) किन्तु धवलगृह के दक्षिणी उद्यान में नहीं।

(फिर हंसता है) अति सुन्दर।

[हंसी के बीच ही नूपुरों की आवाज एकदम बन्द हो जाती है अचानक ही। और साथ ही पहले नागरिक की हंसी भी। कुछ क्षण सन्नाटा और उसके बाद एक साथ शोर उभरता है सबका।]

पहला : यह'''यह क्या ?

दूसरा : विपकन्या।

तीसरा : पड्यन्त्र'''भयकर पड्यन्त्र।

स्वर 1 : विपकन्या को पकड़ो, भागने न पाए।

स्वर 2 : महाराज की हत्या करने वाला राजद्रोही है।

दूसरा : पकडो। भागने न पाए।

पहला : विपकन्या को पकडो, भागने न पाए। यह पड्यन्त्र है।

पुलिक : हां-हां। यह पड्यन्त्र है। कर्तव्यच्युत राजा दंड से परे नहीं होता। इस नराधम राजा का स्वयं शिरोच्छेद करके विपकन्या का पुन्य अपराध मैं अपने सिर लेता हूं।

[थोडा कोलाहल]

पुलिक : नागरिक जन सुनें। बाहेद्रथ वश का अन्तिम राजा रिपुजय, अपने कुकर्मों के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ। किन्तु आर्यपद कभी रिक्त नही रह सकता। महामात्य पद के अधिकार से मै अपने पुत्र कुमार सेन को मगध का राजा घोपित करता हूं। अभिपेक समारोह कल होगा। विरोधियों तथा आतंक फैलाने का प्रयत्न करने वालों को जीवित जला दिया जाएगा।'''मेरा आदेश है कि अभिपेक घोपणा के इस शुभ अवसर पर आप सब आनन्द मनाएं।

[कुछ क्षण सन्नाटा, फिर कोलाहल और एकसाथ ही उभर पड़ता है। धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। पर संगीत उसको भी डुबा देता है'''और''']

चन्द्रवाला : वह आग कहां लगी है।

श्रवणा : (कुछ दूरी से) वहां? [illegible], वह'''वह तो'''[illegible]

तो आचार्य [illegible] का [illegible] [illegible] है।

चन्द्रवाला : आचार्य शैवलिक कौन ?

श्रवणा : वे···वे मनुष्य नहीं विष्णु के अवतार हैं वहन। यह
अभागिन वसुमित्रा उन्हीं के प्रसाद से जीवित है।

चन्द्रवाला : फिर तो वडा अनर्थ हो गया स्वामिनी।

श्रवणा : स्वामिनी कह कर मेरा अपमान क्यों करती हो वहन !

चन्द्रवाला : भूल के लिए क्षमा चाहती हूं। आपका हृदय दुखाने की मैं
स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकती। आप···अ···तुम
नो देवी हो···वहन। मैं सारा जीवन उऋण नहीं हो
सकती।

श्रवणा : न न। देवी मैं नहीं तुम हो। मुझे धर्माचार्यों के वीच
मणिका का रूप धारण करना पड़ा और तुम दासों के हट्ट में
भी हाथ से कटार लिए वीरांगना जैसी प्रज्वलित रही।

चन्द्रवाला · अच्छा अभी ये वातें रहने दो। किसी को भेज कर आचार्य
शैवलिक के सम्वन्ध मे पता तो लगाओ।

औदुम्व . (आते हुए) आचार्य सकुशल है सुमगली।

चन्द्रवाला : कौन ?

औदुम्व · तुमने अपने आचार्य को पहचाना नहीं वेटी कुवलया !

श्रवणा · प्रणाम करती हूं आचार्य। आपके छद्मवेश ने मुझे भ्रम में
डाल दिया था।

औदुम्व : तुम्हारी जय हो।

श्रवणा : आचार्य ! कुमारसेन का राज्याभिपेक भी हो चुका है।
अव···

औदुम्व : राज्याभिपेक तुम्हारे पुत्र का होगा वेटी !

श्रवणा : यह तो अगले जन्म में ही सम्भव है आचार्य !

औदुम्व : नहीं पुत्री, इसी जन्म में। अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ है।
जयसेन को वुलाओ। वसुमित्रा को उसके पिता के पास
भेजना है।

श्रवणा : जो आज्ञा। (जाती है)

औदुम्व : सुमंगली चन्द्रवाला ! तुमने मुझे पहचान लिया। मैं
औदुम्वरायण ही हूं। तुम्हें कुछ वोलने को संकेत से मना
किया था, क्योंकि तुम्हें अपने को छद्मवेश में ही रखना है।

इसी में तुम्हारा कल्याण है। कुवलया के प्रति भी जिज्ञासा प्रकट करने का प्रयत्न नहीं करना। इतना जान लो कुवलया गणिका नही। देश की वेदी पर अपना समस्त जीवन, सुख तथा प्रतिष्ठा न्योछावर कर देने वाली विदुषी है। उसे श्रद्धेय बहन का सम्मान देना।

चन्द्रबाला : ऐसा ही होगा आचार्य ! किन्थत आपको पता था कि मैं गिरिव्रज में···

औदुम्ब : मुझे पूरी सूचना है सुमंगली। मैं जानता हूं कि तुम और तुम्हारा पुत्र बिम्बसार दो दुष्टों के हाथ में पड़ गए थे। उनसे छुटकारा हुआ तो दास विक्रेताओं के हाथ लगे। मेरे शिष्य तुम्हें देख चुके थे। मेरे आदेश पर ही देवी कुवलया दासों के हट्ट से तुम्हें लाई थी।

चन्द्रबाला : मैं समझ गई आचार्य !

औदुम्ब : किन्तु कुवलया तुम्हारे कुल और परिवार से परिचित नहीं···और न ही उसे होना चाहिए। समय आने पर मैं सब व्यवस्था कर दूगा। अब तुम जा सकती हो।

चन्द्रबाला : प्रणाम करती हूं आचार्य !

[संगीत अन्तराल जैसे बहुत समय बीत चुका है।]

श्रवणा : प्रणाम करती हूं आचार्य···पधारिए।

औदुम्ब : तुम्हारी जय हो पुत्री।···हूं हूं···संघर्ष से चित्त क्लांत हो गया है क्या ?

श्रवणा : नहीं आचार्य ! किन्तु कुमार सेन का अभिषेक हुए वर्षों बीत गए। संघर्ष ही स्वयं क्लांत और शिथिल हो गया है।

औदुम्ब : तथ्य यह नही है पुत्री। क्रांति के द्वार तक पहुंचते ही संघर्ष गौण हो जाता है। जैसे नदी सागर में पहुंचने पर··· (कुछ क्षण चुप्पी)

श्रवणा : चन्द्रबाला न जाने किस चिन्ता में डूबी रहती है। कहती है, जन्म से लेकर मृत्यु तक दुख की अविराम शृंखला है। यही शृंखला जीवन है। इस जीवन से मुक्ति मिले, दुख क्षय की राह निकले, तभी शान्ति का सूर्योदय हो। मैं तो उसके विचार से भयभीत हो गई हूं।

औदुम्ब . भयभीत होने का कारण यह नहीं है। विश्व को एक श्रृखला में बांधने का एक यह भी साधन है। किन्तु यह तो साध्य से भी कठिन है।...

चन्द्रवाला मेरा प्रणाम स्वीकार हो आचार्य!

औदुम्ब सुमंगली! सुना तुम आत्मिक सुख की राह पर अग्रसर हो रही हो?

चन्द्रवाला : ऐसा हो पाता तो मैं अपना जीवन धन्य मानती। अभी तक तो शब्द, रूप और स्पर्श की तृष्णा में पड़ी छटपटा रही हूं। कही निस्तार नही दीखता।

औदुम्ब · उसका भी समय आएगा देवि! अभी तृष्णा की सीमा नही पहुची है। मैं यह सूचित करने आया हूं कि आयुष्मान विम्विसार, राजा का वन्दी हो गया है।

श्रवणा कव? कैसे? ओह मेरा पुत्र!

औदुम्व : आज ही। अवन्ति के सैनिको से उलझ पड़ा था।

श्रवणा . अव क्या होगा। आचार्य। राजा का अत्याचार तो सर्वविदित है...ओह मेरा पुत्र। आचार्य .. (रो पड़ती है।)

औदुम्व . तुम जैसी वीरागना को ऐसा आचरण शोभा नहीं देता।

श्रवणा . भावोद्रेक के लिए क्षमा चाहती हूं आचार्य!

औदुम्व तुम्हे ज्ञात है मगध के अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन हमारे पक्ष मे है। मैंने उसे आदेश दिया है कि वह कुमार सेन से कहे धृष्ट विम्विसार ने तीन अवन्ति सैनिक मार डाले, प्रजा मे विद्रोह फैलाने का प्रयत्न किया और महाराज की मर्यादा को ठेस पहुंचाई।

श्रवणा · यह आप क्या कह रहे है आचार्य! मेरा विम्विसार... आचार्य! यदि जयसेन यह सव वातें कह देगा तो मेरा विम्विसार निश्चय ही मार डाला जाएगा। आचार्य, मै आपसे भीख मांगती हू उसे वचा लीजिए।

औदुम्व : (स्नेह से) देवी कुवलया! विम्विसार को मैं वह जीवन दे रहा हूं जिसकी तुमने कल्पना भी नही की होगी। तुम्हारा पुत्र अनन्तकाल तक अमर रहेगा। उसे वाह्य शत्रु का कोई भय नही है। मेरी योजना पर विश्वास रखो। मेरी

यह योजना मेरा अन्तिम प्रयोग है।

[संगीत]

जयसेन : बन्दी उपस्थित है महाराज।

कुमारसेन . हूं। तुमने राज सैनिकों पर शस्त्र क्यों उठाया।

बिम्बिसार : एक निरस्त्र नागरिक की रक्षा के लिए जिसे वे विना कारण पीट रहे थे।

कुमारसेन : नागरिक की रक्षा का दायित्व तुमने किस अधिकार से अपने ऊपर लिया।

बिम्बिसार : मागध होने के अधिकार से।

कुमारसेन : धृष्ट बालक ! तू नहीं जानता रक्षा का दायित्व राजा का होता है।

बिम्बिसार : किन्तु राजा यदि दुर्बल हो तो एक-दूसरे की रक्षा का अधिकार प्रजा को प्राप्त हो जाता है।

कुमारसेन : हूं यह उद्दंडता ! जयसेन, तुमने इस बालक के संबंध में जो कहा था सत्य कहा था। इसको जीवित जला दो।

पुलिक : आते हुए। नहीं, इस आज्ञा का पालन नही हो सकता।

कुमारसेन : पिताश्री···।

पुलिक : इसे तुम मृत्युदंड नहीं दे सकते कुमार !

कुमारसेन : मेरा आदेश अटल है, पिताश्री !

पुलिक : जयसेन ! बन्दी को सैनिकों के संरक्षण में, अंगराज ब्रह्मदत्त की सेवा में पहुंचाने का प्रबंध करो।

जयसेन : किन्तु···

पुलिक : किन्तु-परन्तु कुछ नही। बन्दी को सकुशल पाकर अंगराज ब्रह्मदत्त मगध के ऋणी होंगे। हमें उनकी मित्रता की आवश्यकता है। जयसेन···आदेश का तुरन्त पालन किया जाए।

जयसेन : जो आज्ञा··· (चला जाता है)

कुमारसेन : आपको पता भी है कि वन्दी कौन है ?

जयसेन : मुझे ज्ञात है वह भट्टिय हेमजित का पुत्र है न। कुमारसेन, तुम मगध के राजा हो पर नीति का तुम्हें कुछ ज्ञान नहीं। भट्टिय जब चम्पारण्य में कृष्ण दस्यु के रूप में

अश की सीमा पर आतंक फैला रहा था। वत्सराज सतानिक ने अंग पर आक्रमण किया था। ब्रह्मदत्त से उसे पूरी सहायता की आशा थी और उन्होंने सहायता की भी, पर हेमजित ने उनके सव प्रयत्नों को विफल कर दिया और सतानिक की हार हुई। हेमजित ने सतानिक को ब्रह्मदत्त के वास्तविक व्यक्तित्व का भी परिचय दिया जिससे ब्रह्मदत्त, वत्सराज की दृष्टि में सदा के लिए घृणा का पात्र वन गया। अंगराज ब्रह्मदत्त तभी से भट्टिय पर क्रुद्ध है। अब भट्टिय का पुत्र अपने वन्दी के रूप में पाकर ब्रह्मदत्त हमारा मित्र वन जाएगा। हमारे विरुद्ध आक्रमण की जो तैयारियां हो रही है, उनमें यह मैत्री वहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

कुमारसेन : कुछ भी हो पिताश्री ! आपको मेरे आदेश के विरुद्ध इस प्रकार…

व्याघ्रक : महाराज समाचार मिला है कि अवन्ति को अरक्षित पाकर वत्सराज सतानिक पचास सहस्र सैनिकों के साथ अवन्ति की ओर प्रयाण करने वाला है।

कुमारसेन : और अनुज प्रद्योत क्या सो रहे थे ?

व्याघ्रक : युवराज प्रद्योत ने चेदिराज को कई वार चेतावनी दी कि वे लूट-पाट मचाने वाले दस्युओ का उत्पात रोकें, किन्तु चेदिराज ने कुछ नही किया। आतंक वढ़ता ही गया। इस पर युवराज पाद ने चेदि पर आक्रमण कर दिया जिससे सैन्यवल की वहुत हानि हुई।

कुमारसेन : जय किसकी हुई ?

व्याघ्रक : अवन्ति सेना को पीछे हटना पड़ा।

कुमारसेन . अवन्ति के भावी सम्राट, युवराज प्रद्योत की जय हो।

पुलिक : सहज सफलता ने तुम्हे अविवेकी ही नही उद्ण्ड भी वना दिया है।

कुमारसेन : सफलता क्या मिली है पिताश्री ! एक वन्दी को दड तक नहीं दे सकता।

पुलिक . शासन राजा की इच्छा से नही चलता। देश की सुरक्षा

का ध्यान रखना भी आवश्यक है।

कुमारसेन : आर्यपट्ट पर मेरा अभिषेक हुआ है। देश के हित-अहित की चिन्ता से आप मुक्त ही रहें तो अच्छा।

पुलिक : कुमारसेन !

कुमारसेन : कुमारसेन नहीं। महाराज कहिए पिताश्री ! राज-मर्यादा का उल्लंघन करने का अधिकार आपको भी नहीं है।

पुलिक : तेरे जैसे कृतघ्न पुत्र के लिए ही क्या मैंने इतना रक्तपात किया ?

कुमारसेन : तभी तो राजद्रोह करते रहना आपका धर्म हो गया है।

पुलिक : कुमारसेन !

कुमारसेन : महाराज कुमारसेन कहिए। महाराज कहने में आपको इतना संकोच क्यों है ?

पुलिक : पहले महाराज पद के योग्य बनो।

कुमारसेन : यह तो आपको मुझे अभिषिक्त करने के पूर्व ही सोच लेना चाहिए था।

पुलिक : अच्छी बात है महाराज कुमारसेन। अपराध निश्चय ही मेरा है। सत्ता की भूख मनुष्य को राक्षस से भी क्रूर बना देती है। चलो सेनापति स्वस्तिसेन, माहिष्मती अभियान का प्रबन्ध करो।

कुमारसेन : (व्यंग) प्रणाम करता हूं पिताश्री !

[संगीत]

पुलिक : कुमारसेन से तो कोई आशा नहीं रखी जा सकती। उधर अवन्ति का समाचार भी शुभ नहीं। सीमा पर वत्सराज का सैन्यबल उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। कुछ समझ में नहीं आता। क्या मैं स्वयं अपने सैनिकों को लेकर आक्रमण कर दूं...यह नहीं सैनिक शिविर के लिए इससे उपयुक्त स्थान नहीं मिलेगा। प्रद्योत ने भी नासमझी का काम किया। चेदि पर आक्रमण करके असमय में ही आपत्ति को आमंत्रित कर लिया...

व्याघ्रक : (तेजी से प्रवेश) अनर्थ हो गया महाराज ! आधे से अधिक सैनिकों ने विश्वासघात किया। उनके आवास रिक्त पड़े

है।

पुलिक : क्या ?

व्याध्रक · जी प्रभु। किसी का पता नही। कदाचित वे रात को भाग निकले।

पुलिक : शिकारी कुत्ते क्या कर रहे थे ? प्रहरी कहां थे ?

व्याध्रक : प्राय सभी शिकारी कुत्ते मरे पड़े हैं। प्रहरी या तो काल के ग्रास हो चुके है या विपवाणों से अर्द्धमृत है।

पुलिक : किन्तु···

व्याध्रक : महाराज, अभी सूचना मिली है कि चेदिराज के सैनिक अवन्ति की सीमा चौकियों पर आक्रमण कर रहे हैं।

पुलिक : चेदि जनपद को हम धूल में मिला देंगे। सेनापति से कहो युद्ध की घोपणा करें। शीघ्रता करो। चेदि को हम सैनिक शून्य कर देंगे।

[शोर उभर पड़ता है और जयघोप।]

व्याध्रक : महाराज, सामने पहाडी के ऊपर से आक्रमण आरम्भ हो गया है।

पुलिक . है ! चलो ! मैं स्वयं सैन्य का नेतृत्व करूंगा। सेनापति से कहो कि वे बाईं ओर से शत्रु के पीछे उस पर आक्रमण का प्रयत्न करें।

[कोलाहल उभरता है। घोडों की टापें, मारो-काटो युद्ध के नगाड़े, वाण-वर्पा, तलवारों की आवाज]

व्याध्रक : आज यदि आप स्वयं नेतृत्व न सभालते तो अनर्थ हो जाता। आपके कारण ही शत्रुपक्ष के पांव उखड़ने लग गए है।

[कोलाहल फिर उभरता है।]

व्याध्रक : महाराज पीछे देखिए। उस पहाड़ी पर।

पुलिक : हूं। लगभग एक सहस्र सैनिक। बड़े वेग से पहाड़ी पर से उतर रहे है।

व्याध्रक : कदाचित महाराज कुमारसेन ने ये सैनिक सहायता के लिए भेजे हों।

पुलिक : नहीं व्याध्रक वे भी शत्रु पक्ष के ही सैनिक है।

[मारकाट का शोर दुगना हो जाता है।]

युद्ध कौशल में वे बहुत निपुण है व्याघ्रक। देखते-देखते शत्रु ने हमें चारों ओर से घेर लिया है। चलो अब सोच-विचार का अवसर नही। हमें कार्य करना है। हमें शत्रुओं को बता देना है कि पुलिकसेन की भुजाओं में कितना बल है।

[लड़ाई का शोर फिर उभरता है और फिर।]

व्याघ्रक : महाराज उधर देखिए, शत्रुपक्ष का एक अश्वारोही आपके अंगरक्षकों के घेरे को तोड़ इधर ही आ रहा है।

पुलिक : वह…वह तो…

हेमजित : मुझे विश्वास है मैं मगध के भूतपूर्व महामात्य पुलिकसेन की स्मरणशक्ति को परीक्षा नहीं ले रहा हूं।

पुलिक : तुम…भट्टिय हेमजित।

हेमजित : आपने स्मरण रखा इसके लिए…

व्याघ्रक : हेमजित। ठहरो मैं…आह…

[कटार नीचे झन्न से गिर जाती है।]

हेमजित : यह था आपका स्वामिभक्त व्याघ्रक। आपका दायां हाथ। आपके सैनिक समाप्त हो गए। ऐसी दशा में आपके लिए मृत्यु के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं दीखता।…तुम सब लोग अपने शस्त्र फेंक दो अन्यथा…(शस्त्रों के झन्न-झन्न गिरने की आवाज।) आपने शस्त्र क्यों फेंक दिए? अभी तो मुझे न जाने कितने दिनों का हिसाब चुकता करना है। सैनिक, महाराज पुलिकसेन को शस्त्र उठाकर दे दो।

औदुम्ब : इसकी कोई आवश्यकता नही आयुष्मान।

पुलिक : आप! आचार्य शैवलिक यहां…

औदुम्ब : हां…वैद्य जो ठहरा। जहा रोग वहीं मैं। किन्तु मैं आचार्य शैवलिक ही नहीं आचार्य औदुम्बरायण भी हूं।

पुलिक : अ…अ…आप औदुम्बरायण! भट्टिय के मार्ग निर्देशक!

औदुम्ब : हां पुलिकसेन।

पुलिक : किन्तु आचार्य! आपने तो मुझे भी अपना प्रसाद…

औदुम्ब : तुम्हारा भ्रम है पुलिकसेन! जो अपने स्वार्थ की सिद्धि

के लिए सिंहासन चाहता है, वह देशद्रोही ही हो सकता है राजा नहीं। आर्यपद का वास्तविक स्वामी तो प्रजा है। तुम चाहते तो रिपुंजय को सन्मार्ग पर ला सकते थे। किन्तु तुमने महामात्य के कर्तव्य का पालन नहीं किया। तुम प्रजा का नहीं अपने उत्तराधिकारी का हित चाहते थे। तुम मेरा प्रसाद कैसे पा सकते थे। भट्टिय पुलिकसेन अब दन्तहीन सर्प जैसा है। जिस पुत्र के लिए इसने इतने पाप किए उसी ने इसे त्याग दिया। इसकी हत्या कर निरर्थक दोष मत लो। इसे क्षमा कर दो।

हेमजित : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

[संगीत]

चन्द्रबाला : आज क्या बात है सखी ? बहुत आनन्दमग्न हो !

श्रवणा : तुम्हें नहीं मालूम। क्या मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा।

चन्द्रबाला : नहीं तो।

श्रवणा : तब तो मैं पागल हो गई हूं।

चन्द्रबाला : लगता है जैसे तुम्हारी युगों की साध पूरी हो गई।

श्रवणा : पूरी हुई नहीं होने वाली है। पन्द्रह वर्ष बीत गए। गणिका वृत्ति से अनजान होते हुए भी पन्द्रह वर्ष से मैं गणिका हूं। कहने को मेरे पास सब सुख-साधन है, अपार वैभव है। कभी अभाव नहीं हुआ। किन्तु जिसके लिए मैं ऐसी बनी वह पन्द्रह वर्षों से जंगलों-पहाड़ों में भटक रहा है। वह…वह…शिवरात्रि के दिन यहां आ रहा है।

चन्द्रबाला : वे भी शीघ्र ही आने वाले है सखि !

श्रवणा : फिर तो बड़ा आनन्द रहेगा।

चन्द्रबाला : किन्तु मेरा मन बड़ा उद्विग्न है सखि ! जीवन का क्षण-भंगुर आनंद, भयावह भूचाल का संकेत देता-सा जान पड़ता है।

श्रवणा : ये मिथ्या धारणाएं है बहन ! इनसे दूर रहो, अन्यथा भटक जाओगी।

चन्द्रबाला : जीवन में भटकने के अतिरिक्त और है ही क्या ? लक्ष्य का सत्य तो किसी को भी ज्ञात नहीं है। वही दीख जाय

तो फिर दुख क्यों हो ?

श्रवणा : फिर वही व्यर्थ की बात। चलो देख आएं शिवरात्रि समारोह के लिए क्या-क्या प्रवन्ध हो रहा है।

[संगीत। कोलाहल जैसे एक मेला-सा लगा हो।]

नाग० पहला : ओहो मेरे वन्धु ! आज फिर उत्सव के समय इतने वर्षों बाद हम मिल गए है। क्या बात है ? कुछ अशुभ तो नहीं होने वाला ?

दूसरा : मित्र, अशुभ तो व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है। एक बात मेरे लिए अशुभ सिद्ध हो सकती है। उसी दिन की बात ले लो। वह दिन रिपुंजय के लिए अशुभ था किन्तु कुमार सेन के लिए कदाचित उससे शुभ दिन आया ही नहीं।

तीसरा : पर बन्धु प्रजा के लिए तो आज का दिन पहले से भी अशुभ सिद्ध हुआ। अत्याचार और अधर्म का साम्राज्य पूरी तरह स्थापित हो चुका है।

पहला : उधर कुछ उपद्रव हो रहा है आओ देखें।

दूसरा : चलो-चलो।

[कोलाहल उभर आता है।]

जयसेन : तालजंघ। यही अवसर है। कुमारसेन चारों ओर से दर्शनार्थियों से घिरा हुआ है। आचार्य एव भट्टिय की इच्छा पूरी कर दो। शीघ्रता करो। अगरक्षक चले आ रहे हैं।

[कोलाहल एक क्षण ठिठक-सा जाता है और उसी में कुमारसेन की चीख जो फिर कोलाहल में डूब जाती है। 'मारो', 'काटो', 'वह जा रहा है', 'पकड़ो', 'उसने महाराज की हत्या कर दी', '*हत्यारा किधर गया*', आदि स्वर कोलाहल में से हल्का उभर कर शोर को दुगुना कर रहे हैं।]

पहला : कहा था न...आज हम फिर मिले हैं। अवश्य कुछ होने वाला है।

दूसरा : तुम तो पागल हो। अब चलो यहा से चलें नहीं तो

महाराज के अंगरक्षक हमीं को···

तीसरा : बन्धु, जाओगे कहां ? मार्ग कहीं दीखता है ?

पहला : मित्र उधर राजा के सैनिकों पर आक्रमण हो गया है। अपरिचित सैनिक हैं। सहस्रों की संख्या में। अश्व-सेनाध्यक्ष जयसेन ने भी अपने पांच सहस्र सैनिक उनकी सहायता में लगा दिए हैं। चलो भागो। अन्यथा···

दूसरा : अब यहां से निकल भागने में भी कल्याण है।

[मार-काट बढ़ जाती है और आऊट हो जाती है। नक्कारों की ध्वनि और]

उद्घोषक : गिरिव्रज के नागरिक ध्यान दें। कल राजसूय यज्ञ सम्पन्न करके नये महाराज का अभिषेक होगा। आचार्य नारायणस्वामी राजतिलक प्रदान करेंगे। कल प्रात.काल सभी नागरिक धवलगृह के वाह्यास्थान मंडप में सादर आमंत्रित हैं।

[नक्कारों की आवाज़ दूर हो जाती है। कुछ घोड़ों की टापें जो थोड़ी दूरी पर जैसे बाहर रुकती हैं और भवन में।]

चन्द्रवाला : सखी···सखी ! लो कदाचित तुम्हारे प्रियतम आ गए।

श्रवणा : हैं···आ गए।

[पदचाप पास आ जाती है और जैसे अन्दर आकर रुक जाती है।]

हेमजित : श्रवणा ! ! चन्दा !! (विराम)

औदुम्ब : आश्चर्य हो रहा है कि स्वप्न लोक में कैसे आ गए। किन्तु यह यथार्थ है। यह गणिका का भवन नहीं, तुम्हारी विवाहिता पत्नी श्रवणा का भवन है। वह जली नहीं जीवित है। मगध के उद्धार के लिए उसके जल मरने का समाचार प्रचारित करना अनिवार्य था आयुष्मान।

चन्द्रवाला : कुवलया ! श्रवणा ! भट्टिय की पत्नी !!

औदुम्ब : सुमंगली चन्द्रवाला ! कुवलया गणिका नहीं है। तुम दोनों का परिचय गोपनीय रखना बहुत आवश्यक था। कल हेमजित के पुत्र बिम्बिसार का आर्यपट्ट पर अभिषेक

होगा। तुम राजमाता हो और श्रवणा तुम्हारी अग्रजा।

चंद्र, श्रवणा : वहन…वहन…

औदुम्ब : राजपुरुषों और राजरानियों की भावुकता शोभा नहीं देती। उन्हें दूसरों के लिए जीना होता है। अच्छा मैं चलता हूं। तुम शीघ्र ही धवलगृह पहुंचो।

हेमजित : हमें धवलगृह चलना चाहिए। वहां विम्बिसार प्रतीक्षा कर रहा है।

श्रवणा : विम्बिसार आ गया ?

हेमजित : अकेला नही, साथ में तुम्हारी पुत्रवधू वैदेही कौशलादेवी भी है।

श्रवणा : पुत्रवधू वैदेही कौशलादेवी !

हेमजित : अच्छा अव चलो। शीघ्रता करो।

चन्द्रवाला : आप लोग जाइए।

श्रवणा : क्यों, तुम नही चलोगी ?

चन्द्रवाला : नही, मैं यही रहूंगी।

हेमजित : यह कैसे हो सकता है ! वहां विम्बिसार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

चन्द्रवाला : विम्बिसार को मुझसे अच्छी मा मिल गई हैं…भट्टिय। श्रवणा जैसी मां वासुदेव कृष्ण सब को दें। मुझे तो इस घर से प्रेम हो गया है। यहां मुझे क्या नही मिला।

श्रवणा : चन्द्रे ! तुम्हें धवलगृह चलना ही होगा।

चन्द्रवाला : क्या वहां जाकर मैं स्वतन्त्र हो जाऊंगी ?

श्रवणा : हा !

चन्द्रवाला : अच्छा तो चलो।

[संगीत]

हुक्म कम्पनी वहादुर का

हुक्म कम्पनी बहादुर का

[दिवस के अवसान का सूचक संगीत धीरे-धीरे मुखर होता है और कुछ देर स्थिर रहकर पृष्ठभूमि में चलता रहता है।]

वृद्ध स्वर : (ऊंचा और व्यंगात्मक)—खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म कम्पनी बहादुर का। (यह वाक्य तीन-चार बार गुंजित होता है और आवाज व्यंग और विषादपूर्ण हंसी में बदल जाती है।)

स्त्री : फिर वह बूढ़ा आदमी सड़कों पर आवाज लगाता फिर रहा है।

पुरुष : पागल हो गया है बेचारा। 25-26 साल पहले इसकी तूती बोलती थी, जब यह नवाब अलीवर्दी खां का खासुल-खास था। अब तो इसे दुख, अपमान और भूख ने पागल बना दिया है।

स्त्री : और अब यह हम सबको पागल बना के दम लेगा।

पुरुष : यही तो नही होता। जितना दर्द और बेचैनी इस बूढ़े मे है, वैसी यदि सबमें होती तो देश रसातल मे नहीं जाता। इस बूढ़े को इतना तो एहसास है कि यह क्या था, क्या हो गया। कैसा था इसका देश और अब किस तेजी से विघटन, विपन्नता और पराधीनता के अन्धकूप में उतरता चला जा रहा है।

स्त्री : तुम मर्दों की जात भी अजीब है। खुद बोते हो और जब काटने की घडी आती है तो हाथ लहूलुहान होने के डर से भाग खड़े होते हो। उस पर तुर्रा यह कि पुरुषार्थी बनने का भी दम भरते हो।

पुरुष : यही हम मार खा जाते हैं। पुरुषार्थ के साथ-साथ

प्रारब्ध का संगम हो तो काम बने। लेकिन यह देश ऐसा अभागा है कि आज तक आक्रमण पर आक्रमण झेलते-झेलते अपनी पहचान तक खोने लगा है। अब तो हालत यह है कि रही-सही पहचान को कायम रखने में ही हम सब मार खा रहे हैं।

स्त्री : कौन-सी पहचान कायम रखने की कोशिश में हो ?··· उदारता की ? क्षमाशीलता की या···या वैराग्य और निवृत्ति की ?

पुरुष : हां, वही पहचान जिसने हमें अपने ही वतन में अनजान, बे-पहचान बना दिया है।

स्त्री : ग़लत। सच तो यह है कि तुममें कौतूहल नहीं रहा, जिज्ञासा नहीं रही, कर्मठता और देश-भक्ति और साहस नहीं रहा। तुम आलसी बन गए और तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया।

सूत्रधार : निस्सदेह, हम आसानी से किसी दूसरे पर विश्वास करने लग गए। खोज और अनुसधान का हममें माद्दा नहीं रहा। जिस देश में सृष्टि के आरम्भ में ही 'क्वासि' की उद्घोषणा सार्थक बनी, यदि वही दृष्टि बनी रहती तो भारत जिस प्रकार परसियन, यूनानी, शक, हूण आदि का डटकर मुकाबला कर सका और कुछ को अपने में रचा-पचा सका, उसी प्रकार पुर्तगालियों, डच, फ्रांसीसियों और अंग्रेज हमलावरों के दांत भी खट्टे कर सकता था। दुखदायी बात तो यह है कि हममें बौद्धिक जड़ता आ गई थी। हम धर्मग्रन्थों को लेकर शुष्क और निरर्थक वाद-विवाद में अपनी बुद्धि का उपयोग करने लग गये थे। महामहोपाध्याय काणे हिन्दू धर्म शास्त्र के इतिहास के प्रथम खण्ड में धर्मशास्त्र संबंधी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं—

काणे : "धर्म शास्त्र पर लिखने वाले पंडित धार्मिक व्यवहार के क्षेत्र में फैली अराजकता को व्यवस्थित करने और प्राचीन ऋषियों के आदेशों के अनुसार जनता के प्रत्यक्ष आचार-

व्यवहार में मेल विठाने के नाम पर वाल की खाल निकालते थे और धार्मिक रीति-रिवाजों तथा मंत्र-तंत्र को मानवीय जीवन का सर्वस्व समझ बैठने-विठाने के अपराधी थे। वे उत्तरोत्तर तंग गलियों और भूलभुलैया में भटकते रहे। उन्मुक्त और उल्लसित वातावरण में समाज जीवन को नई दिशा देने जैसी दूरदृष्टि उनके पास नहीं थी।"

स्वर 1 : उन दिनों विद्वानों और बुद्धिजीवियों के अनुसंधान का विषय था प्रायश्चित्त, कर्म, अकर्म आदि। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होते हुए भी समाज अथवा व्यवस्था का ध्यान इस वात की ओर नहीं था कि किस तरह समुद्र की छाती पर चलने वाले तेज जहाज बनाए जाएं या तोपों में कौन-सा वदलाव लाया जाए कि उनकी मारन शक्ति दुगुनी और तिगुनी हो सके।

स्वर 2 : 'क्वासि' शब्द के उद्घोषक में ज्ञान की पिपासा नहीं रह गयी थी। वह सोच नहीं सकता था कि अपने आपको वचाने के लिए नयी शोध और खोज की वुद्धि आवश्यक है।

सूत्रधार : भारत के शासक, भले वे दिल्ली के वादशाह हों या वंगाल के नवाव, यूरोप से आने वाले व्यापारियों के वाहरी ताम-झाम को देखकर ही उनके गुणों पर रीझ गए। सन् 1608 ई० में पहला अंग्रेजी जहाज 'हैक्टर' सूरत के वन्दरगाह में आकर लगा। जहाज का कप्तान हाकिन्स अपने साथ इंगलिस्तान के वादशाह जेम्स प्रथम की ओर से दिल्ली के सम्राट जहांगीर के नाम चिट्ठी ले आया था। जहांगीर या उसके सलाहकार भला किस प्रकार सोच सकते थे कि दूर पश्चिम की एक छोटी-सी कमजोर और अर्धसभ्य जाति का दूत हाकिन्स एक दिन भारत जैसे विराट और महान देश को रौंद कर तहस-नहस कर देने वाले साम्राज्यवादियों का अग्रदूत सिद्ध होगा। जहांगीर ने हाकिन्स की खातिर की।

स्वर 1 . लगभग पांच साल वाद ही जहांगीर ने शाही फरमान जारी करके अंग्रेजों को अपनी तिजारत के लिए सूरत में कोठी वनाने की इजाजत दे दी और यह भी इजाजत दे दी कि मुगल दरवार में इंगलिस्तान का एक एलची रहा करे। वस, भारत के दुर्भाग्य का दरवाजा उसी दिन खुल गया।

स्वर 2 . पुर्तगाली पहले से भारत में मौजूद थे। दरवार में पुर्तगालियों ने अंग्रेजों के खिलाफ चुगलखोरी शुरू की और अंग्रेजो ने देश के विभिन्न व्यापार केन्द्रों में वसे पुर्तगालियो के साथ मार-पीट का सिलसिला जारी कर दिया। असभ्यता में दोनों एक-दूसरे से वढ-चढ कर थे। लेकिन अंग्रेज छल-प्रपंच और कूटनीति में भी कुशल थे। वस छल-वल के सहारे उन्होंने कभी कहीं के नवाव को फांसीसियों के विरुद्ध तो कहीं किसी दीवान या राजा को नवाव के विरुद्ध उकसाना-लड़ाना आरम्भ कर दिया।

सूत्रधार : सन् 1600 ई० मे ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना के समय इंगलिस्तान की महारानी एलिजावेथ ने जो फरमान जारी किया, उसमें इस कंपनी को इस तरह के साहसी लोगों की मण्डली कहा गया है जो लूट, सट्टे आदि के लिए निकलते है और जो अपने धन कमाने के उपाय में सच-झूठ, ईमानदारी-वेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का अधिक ख्याल नही रखते। कंपनी के डायरेक्टरों ने शुरू ही में इस वात का फैसला कर लिया था कि हम अपनी कंपनी में, किसी जिम्मेदारी की जगह पर किसी शरीफ आदमी को नियुक्त न करेंगे। उन्होंने कलका के नाम अपनी दरख्वास्त में भी लिख दिया था।

समवेत स्वर : "हमे अपना व्यापार, अपने ही जैसे आदमियों द्वारा चलाने की इजाजत होनी चाहिए, क्योंकि यदि लोगों को इस वात का संदेह भी हो गया, कि हम शरीफ आदमियों को अपने यहा नौकर रखेंगे, तो मुमकिन है, हमारे वहुत-से साहसी पत्तीदार अपनी पत्तिया वापस ले ले।"

सूत्रधार : ऐसे मूल्यहीन अंग्रेज व्यापारियों के झांसे में भारत के लोग आसानी से आ गए। जहांगीर उस शासक-परंपरा का शासक था जो विश्वास, क्षमा और उदारता को राजनीति का आधार मानता था। यही नीति नवाबों और राजाओं की थी। सन् 1616 में अंग्रेजों को कालीकट और मछलीपट्टम में कोठियां बनाने की इजाजत मिल गयी और सन् 1624 ई० में अंग्रेजों की प्रार्थना पर जहांगीर ने एक शाही फरमान इस मजमून का जारी कर दिया कि आइन्दा अपनी कोठी के अन्दर रहने वाले कंपनी के किसी मुलाजिम के अपराध करने पर अंग्रेज उसे स्वयं दण्ड दे सकते हैं।

स्त्री-स्वर : जहांगीर के इस फैसले पर आलोचना करते हुए बाद में एक अंग्रेज इतिहास लेखक टारेन्स ने लिखा—

टारेन्स : "बादशाह न्यायशील और बुद्धिमान था। वह उनकी आवश्यकताओं को समझता था। जो उन्होंने मांगा, उसने मंजूर कर लिया। उसे यह स्वप्न में भी नजर न आ सकता था कि एक दिन अंग्रेज इसी छोटी-सी जड़ से बढ़ते-बढ़ते बादशाह की प्रजा और उसके उत्तराधिकारियों तक को दण्ड देने का दावा करने लगेंगे और यदि उनका विरोध किया जाएगा तो, प्रजा का संहार कर डालेंगे और बादशाह के उत्तराधिकारी को 'बागी' कहकर आजीवन कैद कर लेंगे।"

सूत्रधार : उदार भारतीय सम्राट और यहां के लोगों में पश्चिम में प्रचलित राष्ट्रीयता का भाव बहुत प्रबल नहीं था। सच तो यह है कि अंग्रेजी के नेशन शब्द का अर्थ यहां सार्थक नहीं है। भारत बहुभाषीय और बहुजातीय देश है। यदि हम पश्चिम का राष्ट्र शब्द लें तो इसे 'बहुराष्ट्रीय राष्ट्र' कहना पड़ेगा जो कि सही नहीं होगा और 18वीं सदी के शुरू में भारत के अन्दर कोई प्रबल केन्द्रीय सत्ता नहीं रह गयी थी। अनेक छोटी-बड़ी शक्तियां राजनीतिक प्रधानता हासिल करने के लिए बेचैन थीं। यह भी सच है

कि भारत का व्यापार उस समय इंगलिस्तान के व्यापार से कई गुना बढ़ा हुआ था। इसके बावजूद भारत में व्यापार को वह स्थान नहीं दिया जाता था जो उसे यूरोपीय कौमों और खास कर अंग्रेज कौम के जीवन में दिया जाता था। अंग्रेजी कौम पूर्णतया एक व्यापारी कौम थी। तभी तो मुगल सम्राट शाहजहां ने उदारता और दरियादिली में आकर अग्रज कौम के व्यापारियों को भारत में रहने और व्यापार करने के लिए इस तरह की रियायतें अदा कर दी जो आजकल का कोई शासक किसी भी दूसरी कौम के लोगों को अपने देश में देने का कभी विचार तक न करेगा।

स्वर 1 : औरंगजेब ने अंग्रेजी कंपनी की प्रार्थना पर कालीकता, सुनामाटी और गोविन्दपुर, ये तीन गांव, कोठी बनाने के लिए बतौर जागीर कंपनी को प्रदान किए थे और कंपनी ने कुछ दिन बाद वहां किलेबंदी शुरू कर दी।

सूत्रधार बेशक, कुछ ऐसे जागरूक लोग भी थे, जिन्हें अंग्रेजों की रीति-नीतियां दिख लगी। उन्होंने नवाब या सम्राट को सचेत करने की कोशिश की। अंग्रेजों को किलेबंदी करते देख औरंगजेब के कर्मचारियों ने सम्राट से जाकर शिकायत की। अंग्रेजी इतिहासकर टारेंस के अनुसार औरंगजेब ने कहा—

औरंगजेब . "मुमकिन है मेरे आसपास की देशी रियाया ने हसद के सबब फिरंगियों से कुछ झगड़ा किया हो। क्यों न फिरंगी जिस तरह हो सके, अपनी हिफाजत का इंतजाम करें? ये बेचारे परदेसी बहुत दूर से आए हैं और बहुत मेहनती हैं। मैं हरगिज दखल न दूंगा।"

सूत्रधार : और ठीक ही, सम्राट, नवाबों और राजाओं ने अंग्रेजों के गलत काम में दखल नहीं दिया। अपने स्वभाव और चरित्र के अनुसार इन शासकों ने अंग्रेजों की ईमानदारी पर विश्वास किया और यह अंग्रेज भीतर-ही-भीतर सेंध लगाते गए। दीमकों की तरह ये अंग्रेज जमीन के नीचे,

अंधेरे में चुपचाप, अपने लक्ष्य को पूरा करने में लग गए। दीमक जिस तरह हर चीज पर धावा कर देती है, हर चीज को खा जाती है, भीतर-ही-भीतर जड़ों को खा डालती है, खोखला कर देती है, उसी प्रकार अंग्रेजों ने भारत की स्वतंत्रता को समाप्त करना आरंभ कर दिया। आविट नामक एक अग्रेज ने लिखा है :—

आविट : "जिस तरीके से ईस्ट इण्डिया कंपनी ने हिन्दुस्तान पर कब्जा किया, उससे अधिक वीभत्स और ईसाई सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी दूसरे तरीके की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि कोई कुटिल से कुटिल तरीका हो सकता था जिसमें नीचे से नीचे अन्याय की कोशिशों पर न्याय का बढ़िया मुलम्मा चढ़ाने की कोशिश की गई हो - यदि कोई तरीका अधिक से अधिक निष्ठुर, क्रूर, दर्पयुक्त और दयाशून्य हो सकता था, तो यह वह तरीका है जिससे भारतवर्ष को अनेक देशी रियायतों का शासन देशी राजाओं के हाथों से छीन-छीन कर ब्रिटिश सत्ता के चंगुल में जमा कर लिया गया। जब कभी हम दूसरी कौमों के सामने अंग्रेज कौम की सच्चाई और ईमानदारी का जिक्र करते हैं, तो वे भारत की ओर इशारा करके बड़ी हिकारत के साथ हमारा मजाक उड़ा सकते हैं।"

सूत्रधार : बंगाल के नवाब अलीवर्दी खा को यूरोपियन व्यापारी और खासकर अंग्रेजी व्यापारियों की क्रूरता और मक्कारी की जानकारी हो गई थी। इसीलिए अन्त समय निकट आने पर उसने अपने नवाले और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को पास बुलाकर नसीहत की—

अलीवर्दी खां : "मुल्क के अन्दर यूरोपियन कौमों की ताकत पर नजर रखना। यदि खुदा मेरी उम्र बढ़ा देता, तो मैं तुम्हे इस डर से भी आजाद कर देता—अब, मेरे बेटे, यह काम तुम्हें करना होगा। तैलंग देश में उनकी लड़ाइयों और उनकी कूटनीति की ओर से तुम्हे होशियार रहना चाहिए। अपने-अपने बादशाहों के बीच के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों

ने शहंशाह का मुल्क और शहंशाह की रियाया का धन-माल छीनकर आपस में बांट लिया है। इन तीनों यूरोपियन कौमों को एक साथ निर्बल करने का ख्याल न करना। अंग्रेजों की ताकत बढ़ गई है। पहले उन्हें जेर करना। जब तुम अंग्रेजों को जेर कर लोगे, तब बाकी दोनो कौमे रखने की इजाजत न देना। यदि तुमने यह गलती की, तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जाएगा।

स्वर 1 : केन्द्रीय सत्ता कमजोर ही नहीं, खोखली हो गई थी। ईस्ट इण्डिया कपनी के हाकिम-हुक्काम इधर, मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र रचने में मशगूल हो गए। इन लोगों ने कानून और व्यवस्था में ही दखल नहीं दिया बल्कि नवाब को अपमानित करना और उसके दुश्मनों को अपनी ओर मिलाना शुरू कर दिया। तंग आकर सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार के अंग्रेजी कोठी के मुखिया वाट्स को बुलवा भेजा।

[संगीत हेतु]

सिराजुद्दौला : दीवान, कंपनी की कोठी के मुखिया वाट्स को बता दिया जाए कि इन्होंने मुगल सल्तनत और मुर्शिदाबाद के नवाब के खिलाफ क्या जुर्म किए है। फिर हम फैसला करेंगे कि हमें क्या कार्रवाई करनी है।

दीवान : कंपनी की कोठी के मुखिया को मालूम हो कि नये सूबेदार को गद्दी पर बिठाने के समय तमाम मातहत राजाओं, अमीरों और विदेशी कौमो के वकीलों का दरबार में हाजिर होकर नजर पेश करना जरूरी है। लेकिन नवाब सिराजुद्दौला के गद्दी पर बैठने के समय अंग्रेजों की ओर से कोई नजर पेश नहीं की गई।

सिराजुद्दौला : कंपनी ने नवाब की ही नहीं, दिल्ली के बादशाह की भी इज्जत नहीं की।

दीवान : जी, नवाब हुजूर! अंग्रेज कपनी काम पड़ने पर नवाब हुजूर से बात करने की बजाय दरबारियों से बात करके काम चला लेती है और इस तरह दरबार में रिश्वतखोरी

बढ़ा रही है। कंपनी की मंशा ठीक नहीं लगती, क्योंकि वह कुछ दरबारियों को रिश्वत के बल पर अपनी ओर मिलाने की साजिश करती रहती है। कपनी ने कलकत्ता में और दूसरी जगहों पर किलेबन्दी कर ली है और कलकत्ता के किले के चारों तरफ खन्दक खोद डाली है। एक शिकायत यह भी है कि दिल्ली के सम्राट ने इन परदेसियों पर दया करके बंगाल के अन्दर उनके माल पर हर तरह की चुंगी माफ कर दी थी। कम्पनी के दस्तखती पास से, जिसे 'दस्तक' कहते हैं, कपनी का माल प्रान्त में जहा चाहे, बिना महसूल भेजा जा सकता है। अब कंपनी ने इस अधिकार का दुरुपयोग शुरू कर दिया है और अनेक हिन्दुस्तानी व्यापारियों से रुपये लेकर उनके हाथ दस्तक बेचने शुरू कर दिए, जिससे राज्य की आमदनी को जबरदस्त धक्का पहुंचा और सबसे बडी गुस्ताखी जो यह है कि नवाब के मुलाजिम किसी तरह का जुर्म करते है या नवाब के खिलाफ बगावत करते है उन्हें अंग्रेज कलकत्ते मे बुलाकर अपनी कोठी में पनाह देने लगे हैं।

सिराजुद्दौला : सुन लिया आपने ? हमें एक बात और मालूम हुई है वाट्स, कि पूर्णिया के नवाब शौकतजंग को आप लोगों ने ही हमारे खिलाफ लड़ाई करने के लिए उभारा था। खैर, उसे तो हमने शिकस्त दे दी, लेकिन इधर सबसे बडा जुर्म आप लोगों ने यह किया कि ढाका में तैनात हमारे दीवान राजवल्लभ को फोड़कर अपनी ओर मिला लिया है। उसके बेटे किशनदास को कलकत्ता बुलाकर आप लोगों ने अमीचन्द के मकान के अन्दर पनाह दी है। राजवल्लभ की तमाम दौलत भी किशन दास के साथ कलकत्ता पहुंचा दी गई है। हम जानना चाहते हैं कि कंपनी इस तरह की हरकत क्यों कर रही है।

वाट्स : नवाब हुजूर से "हम लोग माफी चाहते हैं। यहां के कायदे-कानून से हम लोग अभी तक वाकिफ नहीं हैं इसलिए गलतियां हो जाया करती हैं। हम इस तरह के

समझौते करने को तैयार हैं जिससे कि नवाब को फिर दोबारा शिकायत का मौका न मिले।"

सिराजुद्दौला : आप अपनी गलती मानते हैं, यह सुनकर हमें खुशी हुई। अंग्रेज शांत व्यापारियों की तरह इस देश में रहना चाहते है तो बड़ी खुशी के साथ रहें, किन्तु सूबे के शासक की हैसियत से हमारा यह हुक्म है कि आप लोग फौरन उन सब किलों को जमीन के बराबर कर दें जिन्हें आपने हाल में बिना हमारी इजाजत के बना लिया है।

सूत्रधार : कासिम बाजार की कोठी के अंग्रेजी मुखिया वाट्स ने नवाब सिराजुद्दौला के सामने चुपचाप समझौते की बात मान ली. लेकिन इस तरह के समझौते ईस्ट इंडिया कंपनी के नायकों ने कई बार किए और कई बार तोड़े। सिराजुद्दौला ने शुरू के अभियानों में अंग्रेजों को शिकस्त दी। फिर भी अंग्रेज कंपनी नवाब के शासन को उखाड़ फेंकने पर आमादा थी। उन दिनों भारत के नवाबों, सूबेदारों और राजाओं की सेना में भी यूरोपियन या ईसाई सैनिको के रूप में तैनात थे।

स्वर 2 : ईसाई पादरियों ने सभी ईसाई सैनिकों के नाम फतवे निकाले कि किसी भी ईसाई धर्मावलम्बी के लिए मुसलमानों की ओर से अपने सहधर्मियों के विरुद्ध लड़ना धर्म-विरुद्ध और महापाप है।

स्वर 1 : दूसरी ओर कंपनी ने नवाब के सिपहसालार और दीवानों को रिश्वतें देकर और दरबार में भेद-नीति के जरिये फूट डालकर मुगल सल्तनत और मुर्शिदाबाद के शासन को कमजोर बनाना शुरू कर दिया।

स्वर 2 : फौजी कार्रवाई करके सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार की कोठी, तन्ना का किला और कलकत्ते की कोठी अंग्रेजों से छीन ली। अंग्रेजों को बंगाल से निकल जाने का हुक्म दिया।

सूत्रधार . दिखने के लिए अंग्रेज कलकत्ते से चल भी पड़े और पास ही फलता नामक स्थान पर जाकर घात में बैठ गए।

वास्तविकता यह भी थी कि कंपनी को साजिशों के जाल पर पूरा भरोसा था। अमीचन्द जैसा देशद्रोही अकेला नही था, कलकत्ते का मानिक चन्द, नवाब सिराजुद्दौला का मुख्य सेनापति मीर जाफर और महाराजा नन्द कुमार जैसे अनेक विश्वासघाती थे जिन्होने सिराजुद्दौला जसे उदार, बहादुर और नेक शासक की पीठ मे छुरा भोंक दिया।

स्वर 1 : अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित बड़ी फौज एक जगह से दूसरी जगह, दूसरी जगह से तीसरी जगह आती-जाती रही और अन्त में 23 जून, सन् 1757 ई० में प्लासी के मैदान में भारत के भाग्य का फैसला हो गया। उस समय सिराजुद्दौला के प्रधान सेनापति मीर जाफर, दूसरे सेनापति यार लुत्फ खां और तीसरे, राजा दुर्लभ राम के अधीन 45 हजार सेना थी। चौथा सेनापति था मीर मदन जिसके अधीन 12 हजार सेना थी।

स्वर 2 : अंग्रेजी सेना का नायक क्लाइव आमने-सामने के युद्ध में लड़ने की काबलियत नहीं रखता था, लेकिन ऐन मौके पर मीर जाफर का रुख बदलने लगा। सिराजुद्दौला ने घबरा कर मीर जाफर के सामने जमीन पर अपनी पगड़ी रख दी और कहा—

सिराजुद्दौला : मीर जाफर, इस पगड़ी की लाज तुम्हारे हाथों में है तुम्हें नाना अलोवर्दी खां की कसम।

मीर जाफर : ऐसा न कहिए नवाब हुजूर, मैं आपका खादिम हूं। आपके सामने सिर झुकाकर वफादारी की कसम खाता हूं।

सूत्रधार : लेकिन जब विजय सिराजुद्दौला के पांव को चूमने जा रही थी, तब मीर जाफर, राजा दुर्लभ राम और यार लुत्फ खां अपनी 45 हजार सेना के साथ अंग्रेजों से जा मिले। अन्त तक साथ दिया केवल मीर मदन ने। सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास-लेखक कर्नल मालसेन ने लिखा है—

मालसेन : केवल उस समय जबकि विश्वासघात अपना काम

चुका, जबकि विश्वासघात ने नवाब को मैदान से निकालकर बाहर किया, जबकि विश्वासघात नवाब को ऊंचे और दुर्जेय स्थान से हटा चुका, केवल उस समय क्लाइव आगे बढ़ सका। इससे पहले क्लाइव के आगे बढ़ने से उसका और उसकी सेना का नेस्तनाबूद हो जाना असंदिग्ध था।

सूत्रधार : मीर जाफर ने नवाब का पद संभालने के बाद महसूस किया कि उसने देश को फिरंगियों के हाथ बेच दिया है। वह मजबूर होकर देखता रह गया और मुर्शिदाबाद जैसा समृद्ध शहर वीरान बन गया। दिल्ली का सम्राट शाह आलम भी अदूरदर्शी था। वह अंग्रेजी कंपनी के हाथ में कठपुतली बनकर रह गया।

समवेत स्वर : वर्धमान, मिदनापुर, घटगाम कपनी के हवाले कर दिए गए।

[डुगडुगी का स्वर]

समवेत स्वर : सरकारी मालगुजारी का रुपया वसूल करने का अधिकार कंपनी को दे दिया गया।

[डुगडुगी का स्वर]

समवेत स्वर : सम्राट या सूबेदार की मदद के लिए, अपनी सेना सुसज्जित करने का अधिकार भी कंपनी ने प्राप्त कर लिया।

[डुगडुगी का स्वर]

समवेत स्वर : मुगल सम्राट के शासन में रहते हुए भी कम्पनी ने अपनी टकसाल अलग कायम कर ली।

[वृद्ध का स्वर—खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का—उभरता है।]

सूत्रधार : मीर कासिम का समय आते-आते कम्पनी के पास करीब 30 हजार सैनिकों का संगठन बन गया। पूरे बंगाल में कम्पनी के सैनिक घूम-घूम कर जुल्म करते रहे। इंगलिस्तान के मशहूर नीतिज्ञ और वक्ता ऐडम बर्क ने वहां की पार्लियामेंट में कहा था—

वर्क : तिजारत जो दुनिया के हर मुल्क को धनवान बनाती है, बंगाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। इससे पहले जबकि कम्पनी को देश में कहीं भी हुकूमत करने का हक हासिल न था, अपने दस्तखत के ऊपर उन्हें बड़े-बड़े अधिकार मिले थे। धीरे-धीरे कम्पनी के नौकर अपनी-अपनी निजी तिजारत के लिए उस पास का उपयोग करने लगे। अंग्रेज व्यापारियों की यह सेना जिधर जाती थी, उधर ही तातारी विजेताओं से बढ़कर लूट-मार और बरबादी करती थी।

सूत्रधार : बंगाल ही नहीं, दक्षिण में अर्काट और पश्चिम में महाराष्ट्र भी कम्पनी के षड्यंत्र का दंश महसूस करने लग गए थे। उन्होने यह भी महसूस किया कि देश को बचाने के लिए केन्द्रीय सत्ता दिल्ली सम्राट के झण्डे के नीचे हिन्दू और मुसलमान राज शक्तियों को मिलाया जाए। सुखद आश्चर्य की बात तो यह हुई कि देश को अपमान से बचाने के लिए केन्द्रीय शक्ति को मजबूत करने की प्रेरणा उसी राजा नन्द कुमार को हुई जिसने सन् 1757 में अमीचन्द धन के लोभ में आकर विश्वासघात किया था। उसने मराठों को भी दिल्ली सम्राट के पक्ष में कर लिया।

स्वर : लेकिन दुर्भाग्य ने भारत का पीछा नहीं छोड़ा था। उसी समय अहमदशाह अब्दाली ने मराठों से पंजाब वापस लेने के लिए जबर्दस्त सेना के साथ हमला कर दिया। 6 जनवरी, 1761 को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में घमासान युद्ध हुआ। मराठों के सेनापति सदाशिव भाउ की अदूरदर्शिता और अभद्र व्यवहार के चलते भरतपुर के राजा और कुछ हद तक अवध के नवाब वजीर चिढ़ गए। पानीपत की लड़ाई मे मराठों की हार हुई और जिस केन्द्रीय सत्ता को सुदृढ़ करने की कल्पना नन्द कुमार ने की थी, वह पूरी न हो सकी।

स्वर : पानीपत की लड़ाई ने भारत को दुर्भाग्यपूर्ण पराधीनता

की ऐसी अंधेरी अनन्त खाई में ढकेल दिया कि भारतीय मानस को लगा जैसे वह अनन्त काल के लिए पराजय की निराशा में डूब गया हो। प्रोफेसर सिडनी ने ठीक ही लिखा है —

प्रो० सिडनी : "कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ-साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इतिहास के पढ़ने वाले को इसके बाद से दूर पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"

सूत्रधार : ऐतिहासिक सत्य तो यह है कि भारत उसी दिन पराधीन हो गया जिस दिन सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार और कलकत्ते की कोठियां अंग्रेजों से छीनकर कम्पनी के नायकों को सही-सलामत वहां से जाने दिया। सिराजुद्दौला की इस उदारता ने जन मानस को भाग्यवादी बना दिया। आम लोग यह मानकर निराश बैठ गए कि शायद उनके भाग्य में यही बदा था। चेतना, जागृति या देशाभिमान के भाव जैसे विलुप्त हो गए थे। जिस समय प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को पराजित करके क्लाइव ने दो सौ गोरे और पांच सौ हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ मुर्शिदाबाद शहर में प्रवेश किया, उस समय का जिक्र करते हुए क्लाइव ने स्वयं कहा था —

क्लाइव : नगर के लोग, जो उस अवसर पर तमाशा देख रहे थे, कई लाख अवश्य रहे होंगे। यदि वे चाहते तो लकड़ियों और पत्थरों से हम यूरोपियन लोगों को वहीं खत्म कर सकते थे।

सूत्रधार : सम्राट अकबर के बाद से ही भारतवासियों का मन इस तरह का बन गया था कि वे अतीत को देखना नहीं चाहते थे, वर्तमान से अरुचि हो गई थी और भविष्य की चिंता जिज्ञासा को निरर्थक समझते थे वे अपने आपको पहचान नहीं पा रहे थे, उनकी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया था। आलस्य और कायरता को उन्होंने कर्म का पर्याय मान

लिया। लेकिन गीता का यह उपदेश सही प्रतीत होता है कि जब-जब धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब ऐसे अवतारी पुरुष भी जन्म लेते हैं जो समाज में नयी आशा का आलोक फैलाकर मनुष्य को निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ने की प्रेरणा देते है।

स्वर : वह समय ऐसा था जब धर्म ही समाज की मुख्य सांस्कृतिक धारा थी। सामाजिक अथवा राजनीतिक चेतना का विस्तार जब तक हो नहीं पाया था। यूरोप से नयी भाषा और नया ज्ञान आया जिसकी रोशनी में भारतीयों को अपना धर्म और अपना रस्मो-रिवाज या तो सतही लगने लगा या हास्यास्पद। अंग्रेजी पढ़े-लिखे और अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित कुछ भारतीय बुद्धिजीवी अपनी हंसी आप उड़ाने में ही गर्व का अनुभव करने लगे।

[कई लोगों के हास्य में से संगीत, घंट-निनाद, शंख, कीर्तन आदि का अस्पष्ट किन्तु कोलाहलपूर्ण स्वर उभर कर पार्श्वगत होता है।]

पुरुष : व्यर्थ है यह मूर्तिपूजा। सुना तुमने, वह रोज मन्दिर में जल चढ़ाने जाती थी। घर में भी सुबह-शाम पूजा करती रहती थी। फिर भी, अपने पति को नहीं बचा पायी। बत्तीस साल की आयु में ही विधवा हो गई।

दूसरा पुरुष : तो क्या हुआ ? जीवन-मरण तो लगा ही रहता है।

पहला पुरुष : अरे मेरा कहना यह है कि जो मूर्ति अपने भक्त की रक्षा नहीं कर पाई वह मानव समाज के भले के लिए क्या कर सकती है ? फिर क्यों उसकी पूजा, कैसी अर्चना ?

दूसरा पुरुष : यह तो अपना-अपना विश्वास है भाई। मानो तो देवता, नहीं तो पत्थर।

पहला पुरुष : बड़ी अच्छी बात है। फिर तो चढ़ जाओ चिता पर हंसते-खेलते और सती बन जाओ। चीखती-चिल्लाती क्यों हो ?

दूसरा पुरुष : मोह, जीवन का मोह ! ऐसा सबके साथ होता है,

भइया ! विश्वासी-अविश्वासी सभी डरते है मौत से, क्योंकि उन्हे जिन्दगी से मोह है।

पहला पुरुष : तो मतलब की वात यही हुई न, कि जिन्दगी जीने के लिए है। फिर निवृत्ति का ढोंग क्यों रचा जाता है ? प्रवृत्ति को स्वीकार करके भी धर्म की राह पकड़ी जा सकती है।

सूत्रधार : निवृत्ति और प्रवृत्ति की चर्चा चल पड़ी। इस तरह की चर्चा स्वाभाविक थी। भारत में इस्लाम पहले से आ चुका था। यूरोपियनों के आगमन के साथ ईसाई धर्म बड़े जोर-शोर से फैलने लगा। हालांकि इन तीनो धर्मों का जन्म एशिया में ही हुआ था, लेकिन ईसाई धर्म यूरोपियनों के साथ यहां आया। वहां के लोगों को अपने बारे में लगा कि वे पिछड़े हुए है, ज्ञानहीन है, प्रकाशहीन हैं। इसलिए जड़ है, मृतप्राय हैं।

स्वर 1 : सच तो यह है कि ईसाई समाज हिन्दू और मुस्लिम समाज से अधिक जाग्रत, अधिक कर्मठ और अधिक उदार था। यह भी सच है कि यहां का समाज ईसाई धर्म से नहीं डरा बल्कि वह डरा ईसाई समाज के साथ आए विज्ञान से, उसके नये अस्त्र-शस्त्र से, उसकी कर्मठता और छल-वल से। इस वात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि भारतीय समाज जिन कारणो से जीर्ण-शीर्ण हो रहा है, कुंठित और निराशाग्रस्त है, उन कारणों को दूर करना होगा और यूरोपियनों के साथ आने वाली वैज्ञानिक विचारधारा के साथ सामंजस्य विठाना होगा।

स्वर 2 : पश्चिम से आने वाली अधि-भौतिकता की टकराहट से एक लाभ यह पहुंचा कि भारत की अर्धमूर्छित प्राचीन सभ्यता सचेत हो उठी। उसने आखें खोल कर देखनें, खोजने की कोशिश की कि सामने जो कुछ है, उसका वीज उसके अपने देश के अतीत में कहीं है या नहीं।

सूत्रधार : भारत का व्यक्तित्व विलक्षण है। जव इसे कोई झकझोरता है, तव इसमें तुरन्त जागृति आ जाती है और जव कोई इसके आत्माभिमान को चुनौती देता है तो उस

चुनौती को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता। भारत ने यूरोप निवासियों के साथ आने वाली सभ्यता, धर्म और संस्कृति के प्रहार को न केवल झेलना शुरू किया, बल्कि वह अपने भीतर की गहराइयों में भी उतरने लगा। उसे लगा कि वह वैराग्य और निवृत्ति के अतिरेक से जीर्ण-शीर्ण हो चला था। यही कारण है कि उसके शरीर पर तरह-तरह की कुरीतियों और रस्म-रिवाजों के झाड़-झंखाड़ उग आए।

स्वर 1 : नई विचारधारा चल पड़ी—

समवेत स्वर : जीवन सत्य है,

समवेत स्वर : संसार अपना नहीं है,

समवेत स्वर : वैराग्य जीवन की पराजय को नहीं कहते और कर्माकर्म का विचार ऐसा नहीं होना चाहिए कि मनुष्य के इहलौकिक सुखों का ही नाश हो जाए।

सूत्रधार : दरअसल, निवृत्ति की ऐसी धारा नहीं थी कि उसमें डूबा हुआ समाज स्वाधीनता और पराधीनताका भेद भूल गया था। न्याय और अन्याय की पहचान नहीं कर पाता था, मान और अपमान की भावना भी उसे छू नहीं पाती थी। वह तटस्थता या स्थिति-प्रज्ञता के भ्रामक अर्थजाल में उलझ कर रह गया था।

स्वर 2 : सती-प्रथा, बाल-विवाह, छुआ-छूत और ऊंच-नीच की भावना को भारत के बुद्धिजीवियों और मनीषियों ने आलोचनात्मक दृष्टि से देखना शुरू किया। यही वह दृष्टि थी जिसने भारत में पुनर्जागरण अथवा नवोत्थान का सूत्रपात किया।

सूत्रधार : शासक वर्ग हमेशा ही शासित जातियों को अपनी तुलना में असभ्य, असंस्कृत और निकृष्ट मानता रहा है। यद्यपि यूरोपियन जाति, विशेषकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेज, किसी भी दृष्टि से, भारतवासियों की तुलना में अधिक सभ्य और अधिक सुसंस्कृत नहीं थे। इतिहास साक्षी है कि 17वीं-18वीं शताब्दी में भारत आर्थिक,

सामाजिक दृष्टि से काफी विकसित और समृद्ध था। यहां के बने सूती और रेशमी वस्त्र पश्चिम एशिया और यूरोप तक तो जाते ही थे, चीन और इंडोनेशिया के साथ भी व्यापार संबंध बना हुआ था। इस देश में खुशहाली तो थी ही, शायद ही कोई घर ऐसा था जिसमें पढ़ा-लिखा व्यक्ति मौजूद न हो, और ईस्ट इंडिया कम्पनी में किस तरह के लोग थे वह आप सुन चुके हैं।

स्त्री स्वर : कुछ ऐसे यूरोपियन भी थे जो भारत की ओर आदर की दृष्टि से देखते थे। फ्रांस के एक विद्वान दुपरोन ने 'औपनिषत' के नाम से उपनिषदों का लातीनी अनुवाद करके प्रकाशित करवाया, जिसे पढ़कर जर्मन का महान दार्शनिक आर्थर शापेनहावर मंत्रमुग्ध रह गया। उसने प्रशंसा करते हुए कहा—

शापेनहावर : "यह अनुपम ग्रन्थ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आपसे आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है, मानो, ये विचार हमारे अपने आत्मिक बन्धु के विचार हों। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई और ग्रन्थ नहीं हो सकता। जीवन-भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है, और मृत्यु-पर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।"

स्त्री स्वर : उपनिषदों का जर्मन विद्वानों, बुद्धिजीवियों, लेखकों और दार्शनिकों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहां के साहित्य में दृष्टि ही बदल गई। मनुस्मृति का अनुवाद पढ़कर नीत्शे जैसा दार्शनिक भी प्रभावित हो गया। सर विलियम ने शकुंतला नाटक का अनुवाद किया और ऋतुसंहार का सम्पादन किया। विलियम जोन्स ने 1786 ई० में एशियाटिक सोसायटी के अधिवेशन में घोषणा की—

जोन्स : "संस्कृत परम अद्भुत भाषा है। वह यूनानी से अधिक पूर्ण और लातीनी से अधिक सम्पन्न है।

सूत्रधार : ईस्ट इंडिया कम्पनी का ही एक कर्मचारी ऐलेक्जेंडर हैमिल्टन था जो सन् 1802 ई० में पेरिस में उन दिनों फंस गया था जब अंग्रेजों और नेपोलियन के बीच खट-पट शुरू हुई थी। फ्रांस में उसने फ्रांसीसी विद्वान चेजी को संस्कृत पढ़ाना आरम्भ किया। इसी क्रम में यूजीन बर्नाफ ने संस्कृत का अधिकार प्राप्त कर लिया। मैक्समूलर इस बर्नाफ का शिष्य था जिसने सायण के भाष्य पर काम किया और वेदों पर भाष्य प्रकाशित करवाया, जिसे पढ़कर यूरोप के ही नहीं, भारत के बुद्धिजीवी भी चकित रह गए। मैक्समूलर ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान और तुलनात्मक धर्म के अध्ययन की परम्परा आरम्भ की, जिसके आधार पर यूरोप की यह अज्ञानता दूर हुई कि फिलस्तीन और यूनान से पुराना और कोई देश नहीं है तथा ब्रजभाषा से प्राचीन और कोई भाषा नहीं हो सकती। यह सिद्ध हो गया कि भारत प्राचीनतम देशों में महत्त्वपूर्ण है और संस्कृत प्राचीन भाषाओं में प्रमुख है।

स्त्री : उससे क्या सिद्ध करना चाहते हो ?

पुरुष : यही कि भारत कर्म-कांड के जंजाल में फंसकर या अन्ध-विश्वासों के अंधकार में भटक कर यह सोच बैठा था कि वह दीन-हीन है, अज्ञानी है, जातीय चेतना और आत्म-सम्मान के भाव से हीन एक अनजान भौगोलिक देश है।

स्त्री : और यह ज्ञान प्राप्त हुआ यूरोपियनों के सम्पर्क में आकर, क्यों ?

पुरुष : हां, यह सही है। यूरोप ने भारत को पराधीन किया, अपमानित किया, इसे लूटा-खसोटा लेकिन यह भी सही है कि वह आईना बनकर भारत के सामने खड़ा हो गया जिसमें भारत ने अपने-आपको देखा और अपने को पहचाना। भारत के निवासियों का स्वभाव रहा है कि वह कठिनाइयों के अभाव में सो जाते हैं और नींद तब टूटती है जब उनके अंग पर कठोर प्रहार किया जाता है।

स्त्री : जगकर उसने किया क्या ? उसके बेटों ने अंग्रेजी पढ़कर

अपनी वेशभूषा बदल ली। अपनी खिल्ली आप उड़ाने में फख्र महसूस करने लगे और अपने देश के हर रस्म-रिवाज को घिनौना और त्याज्य समझने लगे।

पुरुष : ऐतिहासिक प्रक्रिया का यह भी एक स्वाभाविक चरण है। समुद्र-मंथन में केवल अमृत और लक्ष्मी ही नहीं, विष भी निकला था।

स्त्री : वह अमृतघट कहां गया ?

पुरुष : समस्त भारतवासियों का तन-मन उस अमृत के प्रकाश में आलोकित हो उठा है। राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महादेव गोविन्द रानाडे, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, सर सैयद अहमद खां और श्री अरविन्द जैसे महापुरुषों ने अपने ज्ञान और अनुभाव के अमृत से देशवासियों में नई चेतना का संचार किया।

सूत्रधार : जब कभी नव-जागरण या नवोत्थान का समय आया, भारत ने वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखने के साथ-साथ अतीत की गहराइयों में भी झांक कर देखा है। भारत को इस बार लगा कि यूरोप के पास विज्ञान ही एक ऐसी उपलब्धि है जिसे स्वीकार करके वह अपना वास्तविक रूप प्राप्त कर सकता है। अतीत से उसने वेदान्त का सत्य लिया और वर्तमान से वैज्ञानिक दृष्टि। जो सत्य रस्म-रिवाज और अंधविश्वास के आवरण में ढक गया था वह फिर से उद्भाषित हो उठा।

स्वर 1 : राजा राममोहन राय उस महासेतु के समान थे जिस पर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता प्राचीन जपति प्रथा और नवीन मानवता के बीच जो खाई, अंधविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी, स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्रीय के बीच जो अन्तराल तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है, उन सारी खाइयों पर पुल बांधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजने वाले महापुरुष राजा

राममोहन राय हैं।

स्वर 2 : राजा राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच एकता, समीपता और सद्भाव स्थापित करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। उनका उद्देश्य राजनीतिक और राष्ट्रीय था।

सूत्रधार : नवोत्थान के इन नेताओं की प्रेरणा से अन्तःसलिला के रूप में राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता प्राप्त करने की उद्दाम इच्छा समस्त देश में प्रवाहित होने लगी। इन्हीं दिनों अंतरराष्ट्रीय सद्भाव और सहयोग प्राप्त करने की अभिलाषा भी उत्पन्न हुई। आचार्य केशवचन्द सेन ने लिखा—

केशवचद सेन : "मैं एशिया का बेटा हूं। उसके दुख मेरे दुख हैं, उसका आनन्द मेरा आनन्द है। मुझे इस बात का गर्व है कि एशिया के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरा विराट घर है। इसमें व्यापक राष्ट्रीयता और आत्मीयता मौजूद है।"

स्वर : सौभाग्य से अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में एक से बढ़कर एक चिंतक, विचारक और द्रष्टा अवतरित होते गये, जिनमें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का नाम अत्यधिक आदर के साथ लिया जाता है। स्वामी विवेकानन्द की प्रशंसा करते हुए महान क्रांतिकारी और योगी श्री अरविंद ने कहा था—

श्री अरविंद : "वे भगवान शिव के परम दीप्त कटाक्ष हैं। वे ध्यानस्थ चित्रों में शिव के तुल्य प्रतीत होते हैं। शांति में निर्विकार पर जब सक्रिय जीवन में उतरते हैं तो उनके पैरों में ताडव की गत्वरता सर्वत्र दिखाई पड़ती है।"

स्वर 1 : उनका उपदेश था—

विवेकानन्द : "अभय बनो।"

स्वर 2 : उनका सन्देश था—

विवेकानन्द : "जागो।"

स्वर 2 : उनका मंत्र था—

विवेकानन्द : "अपने को पहचानो।"

[अभय बनो, जागो और अपने को पहचानो, ये तीनों शब्द ईको में ध्वनि अंकित किये जायें।]

सूत्रधार : स्वामी विवेकानन्द वेदान्त के ज्ञान को गुफाओं से निकाल कर समाज तक पहुंचाना चाहते थे। वे रहस्यवादी के ढंग-ढरों के विरुद्ध थे। वे, 20 करोड़ देवताओं में अंध श्रद्धा के बदले नास्तिक हो जाना बेहतर समझते थे। वे भारतीय आध्यामिकता को छोड़कर पश्चिम पद्धति के जितने विरुद्ध थे उतना ही जीवन की दीनता के भी। उन्होंने कहा—

विवेकानन्द : "संसार में डूबकर कर्म का रहस्य जानो। संसार यत्र के पहियों से भागो मत। भीतर जाकर देखो यह कैसे चलता है और विश्वास करो, तुम्हें इससे निकलने का रास्ता मिल जाएगा।"

सूत्रधार : वह गरीबी और जहालत के सख्त विरुद्ध थे, उनका कहना था—

विवेकानन्द : ऐसे ईश्वर में विश्वास नही करता जो मरने के बाद स्वर्ग में अनंत आनन्द देगा, पर इस जगत में मुझे रोटी भी नही दे सकता।"

सूत्रधार : इस प्रकार हम देखते है कि नीद मे ऊंघता हुआ भारत करवटें बदलने लगा था। उसकी आंखों की नींद उड़ चुकी थी और वह अपने-आपको पहचानने लग गया था। निराशा, कुण्ठा और दीनता का अंधकार छटने लगा था।

[सगीत का सेतु]

सूत्रधार : राजनीतिक तौर पर भी जागृति के लक्षण साफ नजर आने लगे थे। विदेशी सत्ता से त्राण पाने के लिए जन-मन आकुल-व्याकुल हो उठा था। क्लाइव से लेकर डलहौजी के समय तक, कपनी के प्रतिनिधियों ने, अपने गम्भीर वादों और दस्तखती संधियों की ख़ाक परवाह न करके, भारत के अगणित राजकुलों को पददलित किया, उनकी रियासतों को एक-एक कर अग्रेजी कंपनी के राज्य में शामिल किया, देश के प्राचीन उद्योग-धंधों को बरबाद

कर लाखों भारतीयों से उनकी जीविका छीनी, असहाय बेगमों और रानियों के महलों में घुसकर उनको लूटा और अपमानित किया।

स्वर 1 : वैसे तो अंग्रेजों ने बहुत से अभद्र, क्रूर और नीचतापूर्ण कर्म किए लेकिन, पांच प्रमुख कारण ऐसे थे जिनके चलते सन् 1857 में पहला स्वतंत्रता-संग्राम छिड़ गया।

स्वर 2 : पहला कारण—

समवेत स्वर : दिल्ली सम्राट के साथ अंग्रेजों का लगातार अनुचित व्यवहार,

स्वर 2 : दूसरा कारण—

समवेत स्वर : अवध के नवाब और प्रजा के साथ अत्याचार,

स्वर 2 : तीसरा कारण—

समवेत स्वर : डलहौजी की अपहरण नीति,

स्वर 2 : चौथा कारण—

समवेत स्वर : अंतिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ कंपनी का अन्याय,

स्वर 2 : और पांचवां कारण—

समवेत स्वर : भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई मत का प्रचार।

सूत्रधार : सन् 1837 में सम्राट अकबर शाह की मृत्यु हो गई थी। अकबर शाह के समय ही चार्ल्स मेटकाफ रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। उसने सम्राट और उसके परिवार के साथ अपमानजनक व्यवहार शुरू कर दिया। अकबर शाह की मृत्यु के बाद सम्राट बहादुर शाह सिंहासन पर बैठे। उन दिनों दिल्ली और उसके आसपास के इलाके के ऊपर कम्पनी का पंजा कसता चला जा रहा था। कुछ समय पहले तक सारे भारत के खजानों का जो सम्राट मालिक समझा जाता था अब वो अपने हजारों कुटुम्बियों और आश्रितों के साथ बड़ी कठिनाई के साथ दिल्ली के किले के अन्दर दिन बिता रहा था।

स्वर 1 : ईद, नौरोज और सम्राट की सालगिरह के दिन गवर्नर

जनरल और कमांडर-इन-चीफ सम्राट के दरबार में प्रायः खुद हाजिर होकर नजरें पेश किया करते थे। किन्तु अब नजरों का पेश किया जाना बन्द कर दिया गया।

स्वर 2 : कम्पनी के सम्राट को इतना अधिकार भी नही दिया कि वह युवराज नियुक्त कर सके। उल्टे सम्राट बहादुर शाह के पुत्र कोयाश को अंग्रेज कम्पनी ने अपनी ओर मिलाकर उसके साथ गलत समझौता कर लिया।

स्वर 1 : उधर अंग्रेज कम्पनी ने नाना साहब को नोटिस दे दिया कि बिठूर की जागीर उनसे छीन ली जाएगी।

सूत्रधार : 1857 की क्रांति के लिए वातावरण तैयार होने लगा। सतारा के पदच्युत राजा की ओर से रंगो बापूजी और पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब की ओर से अपील करने के लिए अजीमुल्ला खां इंगलिस्तान पहुंच चुके थे, जहां इन्हे सफलता नहीं मिली। अजीमुल्ला खां भारत की क्रांति के पक्ष में समर्थन प्राप्त करने के लिए टर्की, रूस आदि देशों में भी पहुंचे। दरअसल 1856 से कुछ पहले ही नाना साहब ने बिठुर में बैठे-बैठे क्रांति के लिए गुप्त संगठन बनाया और अपना दूत देश के कोने-कोने में भेजना शुरू कर दिया था। इतिहास लेखक सर जॉन के अनुसार—

सर जॉन के : "महीनों से, बल्कि बरसों से ये लोग सारे देश के ऊपर अपनी साजिशों का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे दरबार तक विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे। इन पत्रो में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न-भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।"

स्वर 2 : क्रांति के पाच मुख्य केन्द्र थे, दिल्ली, बिठूर, लखनऊ, कलकत्ता और सतारा। इस स्वतंत्रता-संग्राम में देश की

जनता और देश के आम लोग किसान और मजदूर शामिल थे। सम्पूर्ण देश एक हो उठा था। लन्दन टाइम्स का विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हावर्ड रसल जो सन् 1857 में भारत में मौजूद था, लिखता है—

सर हावर्ड : "एक वे ऐसा युद्ध था, जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी कौम के नाम पर, बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समूचे राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों को पूरी सत्ता और देशी धर्मों का पूरा अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प कर लिया था।"

स्वर 1 : गुप्त संगठन का कार्य-संचालन बहुत ही कुशलतापूर्वक हो रहा था। एक अंग्रेज लेखक जैकब इस सम्बन्ध में लिखता है—

जैकब : "जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढंग से यह समस्त षड्यंत्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएं की गईं, जिस सावधानी के साथ इस सगठन के विविध समूह एक-दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी, जितनी उनके काम के लिए आवश्यकता होती थी, उन सब बातों को बयान कर सकना कठिन है, और ये लोग एक-दूसरे के साथ भ्राश्चर्य-जनक वफादारी का व्यवहार करते थे।"

सूत्रधार : क्रांति के उन हजारों सेनानियों में, जिन्होंने घूम-घूमकर पूरे देश में आजादी का संदेश पहुंचाया, सबसे प्रमुख नाम फैजाबाद के एक जमींदार मौलवी अहमद शाह का है। क्रांति के नेताओं ने अपने संगठन के दो मुख्य चिह्न निश्चित किए। एक कमल का फूल और दूसरा चपाती। कमल का फूल इस संगठन में शामिल सभी पलटनों में घुमाया जाता था। हाथोंहाथ वह फूल निकलता चला

जाता था और जिसके हाथ में सबसे अन्त में आता था उसका यह कार्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुंचा देता था और चपाती गांव का चौकीदार दूसरे गांव के चौकीदार के पास ले जाता था। चमत्कार-सा मालूम होता है कि चन्द महीनों के अन्दर यह अलौकिक चपातियां भारत जैसे विशाल देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंच गईं। यह निश्चित किया गया कि 31 मई सन् 1857 को समूचे भारत में एक साथ क्रांति का बिगुल फूंक दिया जाए। लेकिन होनी को क्या कहिए ? दम-दम में एक घटना घट गई—

मेहतर : अरे ओ सिपाही जी, जरा लोटा दीजिए तो, मैं भी पानी पी लूं।

सिपाही : पागल हो गया है क्या, जानता नहीं कि मैं ब्राह्मण हूं ! अपना लोटा तुझ अछूत को कैसे दे दूं ?

मेहतर : (जोर से हसता है)। "ब्राह्मण है, फिर भी अंग्रेजी कम्पनी में फौजी बने हुए हैं। अरे अब जात-पांत का घमण्ड छोड़िए।

सिपाही : क्यो ? क्या बकता है ?

मेहतर : ठीक कहता हूं ब्राह्मण देवता ? जल्दी ही आपको अपने दांतों से गाय का मांस और सुअर की चर्बी काटनी पड़ेगी।

सिपाही : खामोश ! जीभ खींच लूंगा।

मेहतर : नाराज मत होइए। अब जो नये कारतूस बन रहे हैं उनमें जान-बूझकर ये दोनों चीजें लगाई जा रही है।

सूत्रधार : ये बात आग की तरह पूरी छावनी में फैल गई और वहां से उन तमाम जगहों में यह खबर जा पहुंची जहा-जहां अंग्रेज कम्पनी की छावनियां थीं। क्रांति के लिए नियत दिन से पहले ही 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर में कुछ हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने कारतूस का उपयोग करने से इन्कार कर दिया। उन्नीस नम्बर पलटन के एक नौजवान सिपाही मंगल पाण्डेय ने परेड के मैदान में पहुंचते ही

अपने साथियों को ललकारा—

मंगल पाण्डेय : हिन्दुस्तान के सिपाहियो, अंग्रेज कम्पनी को हमारा धन लूटकर और हमें गुलाम बनाकर सन्तोष नहीं हुआ तो अब ये हमारा धर्म भी नष्ट करना चाहती है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इन लोगों ने कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी मिला दी है। अब या तो अपना धर्म गंवाने को तैयार हो जाओ या अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश और धर्म की रक्षा करो।

स्वर 1 : अंग्रेजी अफसर सार्जेंट मेजर ह्यूसन चिल्लाया—

ह्यूसन : सिपाहियो, मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार कर लो।

स्वर 2 : कोई सिपाही इसके लिए आगे नहीं बढ़ा, इतने में मंगल पाण्डेय ने अपनी बन्दूक की गोली से सार्जेंट मेजर को वहीं ढेर कर दिया। दूसरा अफसर लेफ्टिनेंट बाग घोड़े पर आगे बढ़ा, लेकिन मंगल पाण्डेय ने उसकी गर्दन भी तलवार से काट डाली।

सूत्रधार : अन्त में मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करके फांसी दे दी गई। यह दुर्भाग्य ही था कि जिस दिन सम्पूर्ण देश में क्रांति करने का फैसला हुआ उससे पहले ही बैरकपुर और बाद में मेरठ में क्रांति की आग भड़क उठी। मेरठ से क्रांतिकारी सैनिक दिल्ली पहुंच गए। दिल्ली, अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, नसीराबाद, बरेली और शाहजहांपुर आदि जगहों पर तैनात भारतीय सिपाहियों ने क्रांति करके उन जगहों को स्वाधीन घोषित कर दिया। आजमगढ़, गोरखपुर, बनारस, जौनपुर और इलाहाबाद भी स्वाधीन हो गए।

[तेज गति का सूचक संगीत]

सूत्रधार : लेकिन एक साथ चारों तरफ स्वतंत्रता-संग्राम शुरू न होने के कारण कुछ जगहों पर अंग्रेज कम्पनी को मौका मिल गया। लार्ड केनिंग एक विशाल सेना सहित जिसमें अधिकांश गोरे, कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे, जनरल नील को बंगाल की ओर रवाना कर चुका था। बंगाल

जाता था और जिसके हाथ में सबसे अन्त में आता था उसका यह कार्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुंचा देता था और चपाती गांव का चौकीदार दूसरे गांव के चौकीदार के पास ले जाता था। चमत्कार-सा मालूम होता है कि चन्द महीनों के अन्दर यह अलौकिक चपातियां भारत जैसे विशाल देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंच गईं। यह निश्चित किया गया कि 31 मई सन् 1857 को समूचे भारत में एक साथ क्रांति का बिगुल फूंक दिया जाए। लेकिन होनी को क्या कहिए ? दम-दम में एक घटना घट गई—

मेहतर : अरे ओ सिपाही जी, जरा लोटा दीजिए तो, मैं भी पानी पी लूं।

सिपाही : पागल हो गया है क्या, जानता नहीं कि मैं ब्राह्मण हूं ! अपना लोटा तुझ अछूत को कैसे दे दूं ?

मेहतर : (जोर से हसता है)। "ब्राह्मण है, फिर भी अंग्रेजी कम्पनी में फौजी बने हुए हैं। अरे अब जात-पांत का घमण्ड छोड़िए।

सिपाही : क्यों ? क्या बकता है ?

मेहतर : ठीक कहता हूं ब्राह्मण देवता ? जल्दी ही आपको अपने दांतों से गाय का मांस और सुअर की चर्बी काटनी पड़ेगी।

सिपाही : खामोश ! जीभ खींच लूंगा।

मेहतर : नाराज मत होइए। अब जो नये कारतूस बन रहे हैं उनमें जान-बूझकर ये दोनों चीजें लगाई जा रही है।

सूत्रधार : ये बात आग की तरह पूरी छावनी में फैल गई और वहां से उन तमाम जगहों में यह खबर जा पहुंची जहां-जहां अंग्रेज कम्पनी की छावनिया थी। क्रांति के लिए नियत दिन से पहले ही 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर में कुछ हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने कारतूस का उपयोग करने से इन्कार कर दिया। उन्नीस नम्बर पलटन के एक नौजवान सिपाही मंगल पाण्डेय ने परेड के मैदान में पहुंचते ही

अपने साथियों को ललकारा—

मंगल पाण्डेय : हिन्दुस्तान के सिपाहियो, अंग्रेज कम्पनी को हमारा धन लूटकर और हमें गुलाम बनाकर सन्तोष नहीं हुआ तो अब ये हमारा धर्म भी नष्ट करना चाहती है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इन लोगों ने कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी मिला दी है। अब या तो अपना धर्म गवाने को तैयार हो जाओ या अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश और धर्म की रक्षा करो।

स्वर 1 : अंग्रेजी अफसर सार्जेंट मेजर ह्यूसन चिल्लाया—

ह्यूसन : सिपाहियो, मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार कर लो।

स्वर 2 : कोई सिपाही इसके लिए आगे नहीं बढ़ा, इतने में मंगल पाण्डेय ने अपनी बन्दूक की गोली से सार्जेंट मेजर को वहीं ढेर कर दिया। दूसरा अफसर लेफ्टिनेंट बाग घोड़े पर आगे बढ़ा, लेकिन मंगल पाण्डेय ने उसकी गर्दन भी तलवार से काट डाली।

सूत्रधार : अन्त में मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करके फांसी दे दी गई। यह दुर्भाग्य ही था कि जिस दिन सम्पूर्ण देश में क्रांति करने का फैसला हुआ उससे पहले ही बैरकपुर और बाद में मेरठ में क्रांति की आग भड़क उठी। मेरठ से क्रांतिकारी सैनिक दिल्ली पहुंच गए। दिल्ली, अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, नसीराबाद, बरेली और शाहजहांपुर आदि जगहों पर तैनात भारतीय सिपाहियों ने क्रांति करके उन जगहों को स्वाधीन घोषित कर दिया। आजमगढ़, गोरखपुर, बनारस, जौनपुर और इलाहाबाद भी स्वाधीन हो गए।

[तेज गति का सूचक संगीत]

सूत्रधार : लेकिन एक साथ चारों तरफ स्वतंत्रता-संग्राम शुरू न होने के कारण कुछ जगहों पर अंग्रेज कम्पनी को मौका मिल गया। लार्ड केनिंग एक विशाल सेना सहित जिसमें अधिकांश गोरे, कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे, जनरल नील को बंगाल की ओर रवाना कर चुका था। बंगाल

देशों का देश भारत

देशों का देश भारत

प्रवक्ता : देशों का देश भारत कहने का अर्थ यह नहीं है कि भारत सबसे बड़ा देश है। बेशक, हमारा देश दुनिया के चंद सबसे पुराने देशों में से एक है—पुराना अपनी संस्कृति की बदौलत—पुराना अपनी सभ्यता के सन्दर्भ में। कहना यह है कि भारत वास्तव में एक महादेश है जहां…

सस्वर गीत : हेथाय आर्य, हेथा अनार्य हेथाय द्राविड़-चीन
शक-हूण-दल पठान-मोगल एक देहे होलो लीन,
रणधारावाहि, जय-गान गाहि, उन्माद कलरवे
भेदि-मरु-पथ, गिरि-पर्वतयारा एसेछिलो सबे।
तारा भोर माझे सबाई विराजे केहो नहे-नहे दूर,
आभार शोणिते रयेछे ध्वनित ताहि विचित्र सूर।

प्रवक्ता : एक महासागर में कई धाराओं के लीन होने की गूंज ही इस बात का सबूत है कि यहां अनेकता में एकता है। इसीलिए लोकदेव नेहरू ने कहा था—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) हिन्दुस्तान की अनेक शक्लें है, अनेक रूप हैं, इस बड़े मुल्क में बहुत चित्र हैं, और ठीक है, ऐसा होना चाहिए। हम नहीं चाहते कि सारा हिन्दुस्तान एक-सा हो, सब लोग एक से हों। यह अच्छी बात है कि उसके तरह-तरह के रूप हों। लेकिन वो अच्छी बात है तभी तक जब उसके पीछे यह मजबूत एकता और एतहाद है।

प्रवक्ता : एकता की पहचान मुसीबत में होती है, ठीक मित्रता की तरह। मित्रता को भी तो एक अनदेखा सूत्र ही आबद्ध रखता है। इतिहास साक्षी है कि जब कभी इस महादेश पर मुसीबत आई, विभिन्न धर्मों-सम्प्रदायों, भाषा-

भाषियों और मत-मतान्तरों से प्रेरित लोग एक जुट हो गए। कारण यह है कि जनतंत्र की विशेषता व्यक्ति या समूह की अस्तित्वहीनता में नही है, बल्कि उनके व्यक्तित्व के विकास में है। जनतन्त्र की यह परंपरा भारत में प्राचीन काल से गगा और सरस्वती की तरह प्रवाहित रही है। भारतवासियों के लिए गणतन्त्र या जनतन्त्र की पद्धति एक जीवन-दर्शन है, एक भौगोलिक आवश्यकता। वैदिक काल में भी—

[अतीत में जाने का संगीत और उसमें से हल्का कोलाहल उभरता है।]

सभापति : सदस्यगण सुनें।

[कोलाहल बन्द होता है।]

सभापति : गणपूरक बताएं कि सभा में सदस्यों की संख्या सभा का कार्य आरम्भ करने योग्य है या नही ?

गणपूरक : संख्या समुचित है श्रीमन् ! आप जानते है कि यह सभा राज्य की समिति के अधीन है। आप सभी सदस्य विवेकशील, मनीषी और प्रभावशाली हैं। अपको विदित है कि राजा को समिति में सदा ही उपस्थित होना चाहिए। समिति में जाने वाले राजा को ही वेद मे सच्चा राजा कहा गया है। लेकिन, दुख का विषय है कि हमारे जनपद का वर्तमान राजा समिति में शामिल नही होता।

एक सदस्य : निश्चय ही यह खेद का विषय है।

एक सदस्य : इस राजा को पद से हटा देना चाहिए। समिति ने क्या निर्णय लिया है,

[संगीत]

प्रवक्ता : समिति और सभा को प्रजापति की दो पुत्रियों के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। अथर्ववेद में इसका प्रमाण है। सभा में बोलने से पहले कोई भी वक्ता इन दोनों बहनों से सहायता पाने की कामना करता है।

श्लोक : सभा च मा समिति

(सस्वर) येनासगछा उप मा

प्रवक्ता : सम+इति, समिति, यानी मिल बैठना ही गणतन्त्र की बुनियाद रही है। समिति और सभा के माध्यम से ही लोकमत को अभिव्यक्ति मिलती रही है। समानों मंत्रः समितिः समानी—राज्य की सर्वसम्मत एक नीति हो—यही उद्देश्य रहा है गणतन्त्र का। उन दिनों भी राजा सर्वोपरि नहीं होता था। सर्वोपरि होते थे विशः, श्रेणियां अर्थात् जन। अजातशत्रु लिच्छिवियों के वज्जिसंघ पर आक्रमण करना चाहता था, लेकिन, उसका प्रधानमन्त्री वर्षकार वज्जिसंघ की एकता से पूरी तरह परिचित था। उसने भगवान बुद्ध से जान लिया था कि जब तक वज्जियों में एकता रहेगी, तब तक वज्जियों का कल्याण ही होगा।

[संघं शरणं गच्छामि का ध्वनि-प्रभाव]

चेटक : कहिए, प्रथम कुलिक महानाम। आपके क्षेत्र में नियम विधान आदि का ठीक से पालन तो हो रहा है न?

महानाम : सब कुछ ठीक है चेटक महाराज! जब तक आपका प्रभाव रहेगा, राज-काज ठीक ही चलेगा।

चेटक : मेरे प्रभाव का कोई महत्त्व नहीं है कुलिक महानाम। जब तक संस्था के सदस्य विवेक और सहमति से संघ नियम के अधीन काम करते रहेंगे, वज्जि संघ सुदृढ़ ही रहेगा। मेरे जैसे राजा, उपराजा और सेनापति आते-जाते ही रहेंगे। चेटक की जगह कोई और राजा आ जाएगा।

महानाम : संघ शासन में नेतृत्व का बहुत बड़ा महत्त्व होता है राजन्! सम्पूर्ण वज्जि संघ जानता है कि राजा चेटक के नेतृत्व में संस्थागार ही नही, न्याय-व्यवस्था और सेना संगठन भी सही दिशा में संचालित हो रहा है। लेकिन, एक जिज्ञासा है।

चेटक : क्या?

महानाम : वज्जि संघ की एकता में पूर्व से ही एक छिद्र था। हम सब लोग उसी से आशंकित थे। अब फिर दूसरा छिद्र भी हम अपने ही हाथों से बनाने जा रहे है।

चेटक : आपका अभिप्राय आपकी पुत्री अम्बपाली से है ?

महानाम : हां श्रीमान् । सब जानते है कि मगध सम्राट बिम्बसार के प्रति अम्बपाली की आसक्ति वज्जि संघ की एकता पर भयंकर आघात साबित हुई है। मैं अम्बपाली का पिता हूं, लेकिन, उससे पहले वैशाली का नागरिक हूं। नागरिक के नाते मुझे इन बातों से असह्य पीड़ा होती है। लेकिन खैर, भगवान अलार कलाम और सिद्ध कोर मट्टकजैसे महात्माओं के आशीर्वाद से उन दिनों वैशाली बच गई। ईश्वर जाने, अब क्या होगा।

चेटक : बिम्बसार उतने लोलुप नही थे, जितना लोलुप कि उनका प्रचंड पुत्र अजातशत्रु है। इसने तो अपने पिता तक को बन्दी बनाकर मार डाला।

महानाम : और अब इसका महामात्य वर्षकार वैशाली आ गया है। अब तो वज्जि सघ की एकता में छिद्र की जगह दरार पड़ जाएगी। वर्षकार बहुत ही कुटिल मन्त्री है। हो न हो, मगध का यह गुप्तचर—वर्षकार हमें तोलने आया हो।

चेटक . लेकिन, महानाम ! आप तो जानते ही है कि बाहर के निवासी को भी वैशाली की नागरिकता दी जा सकती है, फिर भी देखें क्या होता है ? जो भी निर्णय होगा, बहुमत से ही होगा। प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है, तभी तो उपराजा पर यह काम न छोड़ कर आज मै स्वयं संस्था का अध्यक्ष पद ग्रहण करूंगा।

महानाम : सेनापति सिंह भी आ गए।

चेटक : सिंह सेनापति को ही ले लीजिए। इनकी जन्मभूमि वैशाली नही है, लेकिन वैशालो की नागरिकता इन्हें प्राप्त है। इनसे बढ़कर और दूसरा कौन है, जो वैशाली से इतना प्रेम करता हो ?—क्या है शलाका ग्रहापक ? छन्दशलाका की व्यवस्था कर ली गई है ? ठीक से मन-गणना करनी होगी।

शलाका० : हा राजन् !

चेटक : ठीक है। प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है। इसलिए, मत-विभाजन

की आशंका है। जितने सदस्य हैं, उसी हिसाब से दोनों रंग के छन्द-शलाका गिनकर तैयार रखिए। विनिश्चय महामात्य भी आ गए।

महानाम : सभा आरम्भ होने का समय भी हो गया राजन्!

चेटक : भन्ते! सदस्यगण सुनें।

[कोलाहल थम जाता है।]

चेटक : आप सबको विदित है कि मगध के महामात्य वर्षकार को सम्राट अजातशत्रु ने निष्कासन दण्ड दिया है। वर्षकार अब वैशाली में शरण चाहते हैं। बल्कि वे तो गंगा पार कर कोटि ग्राम तक पहुंच भी गए हैं। आज सस्था के सामने प्रस्ताव यह है कि वर्षकार को वैशाली की नागरिकता दी जाए या नहीं?

सदस्य 1 : इसमें छल है।

सदस्य 2 : शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म है।

महानाम : क्यों न यह प्रस्ताव निर्णय के लिए उद्वाहिका को सौंप दिया जाए?

सदस्य 1 : नहीं। प्रस्ताव राष्ट्रीय महत्त्व का है। इसे उद्वाहिका जैसी छोटी समिति को सौंपना उचित नहीं होगा। चार-आठ सदस्य ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय नहीं ले सकते।

महानाम : चूंकि यहां वाद-विवाद ही होता रहेगा और सबको समझ में सब बातें नहीं आएंगी, इसलिए मैंने सुझाव दिया है कि निर्णय के लिए यह प्रस्ताव उद्वाहिका को सौंपा जाए। फिर इस प्रस्ताव में वज्जिसंघ की सुरक्षा का प्रश्न भी शामिल है। खुलेआम वाद-विवाद करना संघ के हित में नहीं होगा।

चेटक : अच्छा हो कि अनुश्रावण इस प्रस्ताव को विधिवत् सस्था में प्रस्तुत करें।

अनुश्रावण : भन्ते! संघ मेरी बात सुने। हमारे इस प्रस्ताव पर संघ अपनी धारणा घोषित करे कि निष्कासित महामात्य वर्षकार को वैशाली में सम्मानपूर्वक शरण दी जाती है।

कुछ सदस्यों का मत है कि इस प्रस्ताव पर उद्वाहिका में निर्णय लिया जाए। अब संघ के ऊपर है, वह अपना निर्णय घोषित करे।

सदस्य 1 : भन्ते ! संघ मेरी बात सुने। वर्षकार मात्र महामात्य ही नहीं, मगध सम्राट अजातशत्रु का गुरु भी है। अचानक ही अजातशत्रु अपने गुरु और अभिभावक को राज्य से निकालने का विचार नहीं करेगा। वास्तव में, वर्षकार यहां आकर हमारी दुर्बलता और शक्ति की थाह लेना चाहता है।

सदस्य 2 : तो क्या हुआ ? हम दुर्बल नहीं हैं। महालि और सिंह सेनापति जैसे पराक्रमी योद्धाओं के रहते हुए वर्षकार हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यदि हमने वर्षकार को शरण नहीं दी तो मगध ही नहीं, वत्स, अवन्ति आदि जनपदों में हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। दुर्बल और कायर ही अपने धर्म से भागते है। जब हमारा धर्म ही नष्ट हो गया तो हमारे पास बच क्या रहेगा ?

चेटक : भन्ते ! संघ मेरी बात सुने। बात दोनों पक्षों की विचारणीय है। मेरा सुझाव है कि प्रस्ताव पर संस्थागार में सभी सदस्यों की उपस्थिति में ही विचार किया जाए। वज्जिसंघ यदि किसी को नागरिकता दे सकता है, तो नागरिकता छीन भी सकता है। हमें अपनी परम्परा, मर्यादा और संघ गौरव के अनुरूप ही किसी प्रस्ताव पर विचार करना चाहिए।

सदस्य 1-2 : हां-हां, हम सहमत है।

चेटक : मेरी राय में अनुश्रावण अपने प्रस्ताव पर छन्द लें।

प्रवक्ता : यह शब्द-चित्र आज से छब्बीस सौ वर्ष पहले वैशाली के सभागार का है। एक ओर जहां राज-काज की पद्धति और व्यवस्था में जन की और जनपदों की, उनका अलग-अलग अस्तित्व रहते हुए भी, मिली-जुली संगठित शक्ति बरकरार रहती थी, वहीं दूसरी ओर, चिन्तन के धरातल पर, संतों और मनीषियों का चिन्तन समूचे देश और

देशवासियों के कल्याण की प्रेरणा देता रहता था। दो विभिन्न धाराएं—एक सत्ता की, दूसरी समाज की—हमेशा से अलग-अलग और समानान्तर प्रवाहित होती रहीं। दोनों में कभी टकराव या विरोध नहीं हुआ। दोनों में से कोई भी एक-दूसरे पर हावी नहीं हुई। दोनों में सह-अस्तित्व रहा। सामाजिक चेतना के प्रहरी समाज-नेता, मनीषी और चिन्तक गांव और नगरों की आन्तरिक व्यवस्था के कर्णधार रहे और भौगोलिक सीमाओं की रक्षा, देशों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की चिन्ता और कानून का पालन सत्ता की जिम्मेदारी रही। अबुलफ़ज़ल की 'आइने अकबरी' नियार्की की पंचायती व्यवस्था और यहां तक कि कार्ल मार्क्स, सर चार्ल्स मेटकाफ आदि के कथन इस बात के सबूत हैं।

[अंतराल संगीत]

प्रवक्ता : बहुत-सी इकाइयों के सद्भावपूर्ण मिलन का नाम ही भारतवर्ष है। तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने घोषणा की थी।

स्वामी विवेकानन्द : हिन्दुओं का विश्वास है कि मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है। और प्रत्येक आत्मा एक वृत्त है जिसकी परिधि का पता नहीं है। अनेक होते हुए भी सभी मनुष्य एक हैं, क्योंकि एक ही परमात्मा फैल कर अनेक हो गया है।

[एक हल्का क्षणिक तार संगीत]

स्वामी विवेकानन्द : मैंने निश्चित रूप से यह जान लिया है कि कोई व्यक्ति या जाति दूसरों से विच्छिन्न होकर जीवित नहीं रह सकती। आदान-प्रदान जगत का नियम है। भारतवर्ष के पास जो कुछ है, उसका प्रचार सारे विश्व में होना चाहिए और बदले में दूसरे लोग जो कुछ देंगे, उसे ग्रहण करने को भारतवर्ष को तैयार रहना चाहिए (क्योंकि संप्रसारण जीवन है और संकोच मृत्यु) प्रेम जीवन है और घृणा मृत्यु।

प्रवक्ता : इन्हीं ऊंचे आदर्शों और उज्ज्वल परम्परा की पृष्ठभूमि

में स्वाधीन भारत के संविधान की रचना हुई—

समवेत स्वर : हम, भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढाने के लिए दृढ-संकल्प होकर अपने संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।

प्रवक्ता : अनेकता में एकता ही भारत की पूजी है। विभिन्न इकाइयों के बीच संगठित शक्ति का संगीत ही भारत और भारतीय गणतन्त्र का सौंदर्य है।

सस्वर गीत : जय गंधमधुरा धरा, जय भू-भारती
गीत के शत दीप वाले प्राण करते आरती।
पथ-विपथ का ज्ञान देती मनोरथ-रथ को सदा,
पुण्य से मां पालती है, धर्म बनकर धारती।
जय गंधमधुरा धरा, जय भू-भारती
अशन भाषा वसन भूषा विविधता में एकता,
भावना में एक, मनहर रम्य रूप अनेकता,
चतुर्दश भाषा-भुवन की भारती भुवनेश्वरी—
एक-सा वात्सल्य, सबको पृथक-पृथक पुकारती—
गंधमधुरा धरा जय भू-भारती।
जय गधमधुरा धरा, जय भू-भारती।

स्वाधीनता का स्वर

स्वाधीनता का स्वर

[संगीत]

नरेशन : देश की सीमाएं मात्र भौगोलिक नहीं होतीं, वह तो सुरक्षित रहता है अपने आदर्शों, परम्पराओं और संकल्प के अभेद्य अदृश्य प्राचीरों में—जहां अनुभवों, उपदेशों और सदेशों की सुरभि उड़ा करती है, वह सुरभि जो कभी स्वरों की गूंज पर संतरण किया करती थी।

[लाल किले पर पन्द्रह अगस्त को श्री नेहरू और जनता द्वारा उच्चरित जयहिन्द की ध्वनि]

नरेशन : अविनाशी अक्षरों के जड़ समूह में समाहित जयघोष मानव-चेतना की व्यापकता का ध्वनिचित्र है। जयघोष की गूंज मानवीय मूल्यों की विजय और महत्ता की अभिव्यक्ति है, संघर्ष के शुभारम्भ और समापन का संकल्पनात्मक स्वर।

स्वर : स्वर जो स्वाधीनता का सहगामी है।

स्वर : स्वर जो स्वाधीनता की सहजता का परिचायक है।

स्वर : स्वर जो साकार होते ही बारहों सूर्य-सा चमक उठता है।

स्वर : स्वर जो सीमाहीन, शाश्वत, सार्वभौम और स्थायी है।

स्वर : स्वर जो ऋचाओं-मंत्रों की सुरभि से क्षण को ही नहीं, काल को भी अभिषिक्त करता रहा है।

नरेशन वही स्वर जयघोष के रूप में पन्द्रह अगस्त सन् 1947 को दिल्ली के लाल किले पर गूंज उठा था। वही स्वर जय-हिन्द के रूप में पहली बार भारत से बाहर सिंगापुर में, 1943 की जुलाई में गूंज उठा था—जब सुभाषचन्द्र बोस वहां पधारे थे और लाल किले पर तिरंगा लहराने का संकल्प लिया था। सन् 47 की पन्द्रह अगस्त को लाल

किले पर स्वाधीन भारत का झंडा लहरा उठा। उस दिन अमर सेनानी जवाहरलाल ने घोषणा की थी—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 47-1]

मैं आपसे आज जो बोल रहा हूं, एक हैसियत, एक सरकारी हैसियत, मुझे मिली है जिसका असली नाम यह होना चाहिए कि मैं हिन्दुस्तान की जनता का प्रथम सेवक हूं। इस हैसियत से मैं आपसे बोल रहा हूं, वह हैसियत मुझे किसी शख्स ने नहीं दी, बाहरी, लेकिन आपने दी, और जब तक आपका भरोसा मेरे ऊपर है, मै इस हैसियत पे रहूंगा और उस खिदमत को करूंगा। हमारा मुल्क आजाद हुआ, सियासी तौर पर, एक बोझा, जो बाहरी हुकूमत का था वह हटा। लेकिन आजादी भी अजीब-अजीब जिम्मेदारियां लाती है और बोझे लाती है। अब, उन जिम्मेदारियों का सामना हमें करना है और एक आज़ाद हैसियत से हमें आगे बढना है और अपने बड़े-बड़े सवालो को हल करना है। सवाल बहुत बड़े है। मवाल हमारी सारी जनता के उद्धार करने के है। सवाल हैं, गरीबी को दूर करना, बीमारी को दूर करना, अनपढ़पने को दूर करना और आप जानते है, कितनी और मुसीबते है, जिनको हमें दूर करना है।

नरेशन : सबसे बड़ी मुसीबत गुलामी थी, जो दूर हुई। लेकिन, प्यारे जवाहरलाल जानते थे कि देश की दूसरी बड़ी मुसीबतें क्या है। सन् 20-21 का जमाना था। श्री नेहरू को उत्तरप्रदेश के कुछ गावों में किसानों के बीच रहने और काम करने का मौका मिला। उन्होने किसानों की दयनीय हालत की चर्चा करते हुए लिखा है—

मुख्य स्वर : *किसान अनपढ़, गरीबी और मुसीबत के मारे थे। भाग्य* के भरोसे दिन काटते और सरकार, जमीदार, साहूकार, छोटे-बड़े हुकाम, वकील, पंडे-पुरोहित, जो भी होते सब उन पर सवारी गांठते और उनको चूसते थे।

नरेशन : महामानव नेहरू ने दलित-पीड़ित भारतवर्ष को बहुत

निकट से देखा था—किसानों की जबर्दस्त ग़रीबी और ज़िल्लत पर वे बार-बार अपार दुख से भर उठे थे। इस-लिए स्वाधीन भारत के पहले सूर्योदय को देखकर भी उन्हें ज़मींदारी प्रथा की कलंक-कालिमा शूल की तरह चुभती रही।

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 47-2]

बहुत सारे प्रांतों में, जो ज़मीन का कानून है, आप जानते हैं, वह कितना पुराना है, कितना उसका बोझा हमारे किसानों पर रहा है और इसलिए अरसे से हम उसके बदलने की कोशिश कर रहे हैं। और यह जो ज़मींदारी प्रथा है, उसको भी हटाने की कोशिश कर रहे हैं।

नरेशन : कुप्रथाओं को मिटाने के अलावा, देश को नये सिरे से सजाना-संवारना था, जिसके लिए सुनियोजित ढंग से समस्याओं को सुलझाना ज़रूरी हो गया। सन् 51 में स्वाधीनता दिवस के अवसर पर श्री नेहरू ने बताया—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 51-4]

आप शायद जानते हों कि अभी कुछ दिन हुए एक योजना एक पांच बरस की योजना या प्लेन, नेशनल प्लान, राष्ट्रीय योजना निकाली गई है, जिसका मतलब यह है कि वो किस तरह से हम इस बड़ी लड़ाई को जीतें, बड़ी लड़ाई यानी हिन्दुस्तान की ग़रीबी के खिलाफ़ लड़ाई और बेकारी के खिलाफ़, किस तरह से हिन्दुस्तान में ज्यादा काम हो, और ज्यादा पैदावार हो, और ज्यादा धन और दौलत निकले जो कि आम लोगों में जाए।

नरेशन : जननायक बार-बार इस बात को दोहराते रहे कि जो कुछ भी होना है, जनता के सहयोग से ही होना है, केवल सरकार के किये कुछ नहीं होगा। इसलिए उन्होंने कई बार, विशेषकर सन् 60 की पन्द्रह अगस्त को देश के सभी नागरिकों से आग्रह किया—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 60-2]

हर वक्त अगर दिमाग में यह तस्वीर रखें, किधर हम जा

रहे है कि एक समाज बनेगी; समाजवादी उसूलों पे, सभी को बराबर का अधिकार उसमें मिले, चाहे वो गाव में रहें या शहर में रहें, सभी को बराबर की तरक्की का मौका मिले, और उसके लिए हम काम करे और मुल्क की दौलत अपने परिश्रम से, मेहनत से बढ़ाये और उसको देखे कि ठीक बटती है, खाली कुछ जेबों में अटक नहीं जाती, तो यकीनन वहां हम इस मंज़िल पर भी पहुंचेंगे।

नरेशन : भारतीय संस्कृति और परम्परा की याद दिलाते हुए श्री नेहरू ने सन् 1952 की 15 अगस्त को कहा था—

[श्री नेहरू की आवाज़ 52-1]

याद है आपको, सम्राट अशोक ने क्या कहा, सम्राट अशोक ने बताया था, अपने सारे साम्राज्य को इस भारत के लोगों को, जो दूसरे के धर्म का, दूसरे के मजहब का आदर करते है वो अपने धर्म का आदर करते हैं, जो दूसरे के धर्म का अनादर करते है वो अपने धर्म को भी नीचा करते है।

नरेशन : विद्यार्थी-जीवन से ही श्री नेहरू में देश को स्वाधीन करने की बेचैनी पैदा हो गयी थी। वे हैरों में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों वे आज़ादी की बहादुराना लड़ाई के सपने देखने लगे। उन्होंने लिखा है—

मुख्य स्वर : 1906 और 1907 पर हिन्दुस्तान से जो खबरें जाती थी, उनसे मैं बहुत बेचैन रहता था। लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को देश-निकाला दिया गया था। बंगाल में हाहाकार-सा मचा हुआ मालूम पड़ता था। पूना से तिलक का नाम बिजली की तरह चमकता था और स्वदेशी तथा बहिष्कार की आवाज़ गूंज रही थी। इन बातों का मुझ पर भारी असर पड़ा।

स्वर : 1912 में जवाहरलाल विलायत से स्वदेश लौटते ही राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये।

स्वर : ज्यों-ज्यों आंदोलन जोर पकड़ता गया, श्री नेहरू की

जिम्मेदारी बढ़ती गयी।

स्वर : कांग्रेस, होमरूल लीग और मुस्लिम लीग जैसे संगठन साथ-साथ काम करने लगे।

स्वर : श्री नेहरू के ही शब्दों में उन दिनों वायुमण्डल में बिजली-सी दौड़ गई और अधिकांश नवयुवकों के दिल फड़कने लगे।

स्वर : महात्मा गांधी से श्री नेहरू की पहली भेंट सन् 1916 में लखनऊ कांग्रेस में हुई।

स्वर : 1919 में गांधीजी के सत्याग्रह सिद्धांत ने राष्ट्रीय आंदोलन को एक नया ही रूप दे दिया।

स्वर : पंजाब में जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड और फौजी कानून के भीषण अपमानजनक और जी दहलाने वाले कारनामों ने समूचे देश को झकझोर दिया।

स्वर : फिर जो 1942 तक सत्याग्रह, असहयोग, बहिष्कार और विरोध का दुर्धर्ष आंदोलन चलता रहा, हमारे जन-नायक जवाहर उसके अन्यतम सेनानियों में रहे।

स्वर : और इस जन-आन्दोलन के सारथी थे महात्मा गांधी।

नरेशन : जिनका वियोग देश को स्वाधीन होते ही झेलना पड़ा। लगभग हर पंद्रह अगस्त को ज्योतिपुरुष जवाहर ने उन्हें लालकिले से श्रद्धांजलि अर्पित की। सन् 48 की पंद्रह अगस्त को पिछले साल के तूफ़ानों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—

[कट श्री नेहरू की आवाज 48-1]

बहुत कुछ उस साल में बातें हुईं, अच्छी और बुरी। लेकिन सबमें बड़ी बात जो इस साल में हुई, सबमें बड़ा सदमा जो हमको पहुंचा वो हमारे राष्ट्रपिता का गुजर जाना। पार साल जब इसी मौके पर मैं आपसे कुछ कह रहा था तो मेरा दिल हल्का था और मैंने आपसे भी कहा था, जो भी कुछ मुसीबतें या दिक्कतें हमारे सामने आएं, हमारा एक जबर्दस्त सहारा मौजूद है, जो हमेशा हमें सही रास्ता दिखाएगा और हमारी हिम्मत बढ़ाएगा। इसलिए

बेफिक्र थे, लेकिन वो सहारा गया।

नरेशन : जिस शक्ति, सामर्थ्य और साहस से भारतवासियों ने आज़ादी की लड़ाई लड़ी, उसका हवाला देते हुए श्रीनेहरू ने सन् 1950 की पंद्रह अगस्त को कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 50-2]

एक साम्राज्य का, एक एम्पायर का, मुकाबला हम करते थे, बड़ी ताकत का, और लोग हैरान होते थे, और कभी हम पर हंसते थे और कभी-कभी ताज्जुब उन्हें होता था, कि बात क्या है ? ये कुछ लोग, कमज़ोर आदमी, न इनके पास हथियार न कुछ, और बैठे है मुकाबला करने, एक बड़ी हुकूमत का, बड़े साम्राज्य का। लेकिन अजीब बात यह थी कि उस वक्त भी हमारे दिल में कोई डर नहीं था, क्योंकि हमने कुछ थोड़ा-बहुत उस अपने बड़े बुजुर्ग और लीडर का सबक सीखा था, कि डरने से काम नही चलता, और हमने मुकाबला किया अपनी हिम्मत से और अपने को भी एक सिपाही हिन्दुस्तान की आज़ादी का समझ के।

नरेशन : इस प्रकार जो आज़ादी मिली। उस आजादी के ख्वाब की तस्वीर क्या थी ? 15 अगस्त 1948 को राष्ट्रनायक जवाहरलाल ने बताया था—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 48-5]

यह तो नही था खाली, कि अंग्रेजी कौम यहां से चली जाये। और हम फिर एक गिरी हुई हालत में रहें। वो स्वप्न जो थे वो थे कि हिन्दुस्तान में करोड़ों आदमियों की हालत अच्छी हो, उनकी गरीबी दूर हो, उनकी बेकारी दूर हो, खाना मिले उन्हें, घर मिले रहने को, कपड़ा मिले पहनने को, पढ़ाई मिले सब बच्चों को, और मौका मिले हरेक शख्स को हिन्दुस्तान में, वो तरक्की कर सकें, मुल्क की खिदमत करें, अपनी देखभाल कर सकें, और इस तरह से मुल्क सारा मुल्क उठे। मुल्क उठते नहीं है थोड़े आदमियों के ऊंची कुर्सी पर हुकूमत को बैठने से,

मुल्क उठते हैं जब करोड़ों आदमी खुशहाल होते हैं और तरक्की कर सकते हैं।

नरेशन : ऐसी आज़ादी लाने के लिए देश को आगे बढ़ाना होगा, संघर्ष करना होगा और कुर्बानी देनी होगी। सन् 50 की पंद्रह अगस्त को श्री नेहरू ने बताया था कि कौमें किस तरह बढ़ती हैं।

[कट श्री नेहरू की आवाज 50-3]

कौमें बढ़ती हैं खुश होकर और आंसू बहाकर और दोनों तरह से। जब कोई कौम कमजोर हो जाती है, जब किसी कौम की आजमाइश नहीं होती हर वक्त, तो वह ढीली हो जाती है।

नरेशन : ठीक तो, जो देश लगभग दो सौ वर्षों तक गुलाम रहा, उसे आर्थिक और सामाजिक तौर पर पुनर्गठित और विकसित करने के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी होगी। लेकिन वह देश कहां है, लालकिले पर झंडा फहराते हुए 1959 में श्री नेहरू ने आग्रह ने किया था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 59-1]

दिल्ली शहर एक खास शहर है, हिन्दुस्तान का और दुनिया का, और आप और हम जो दिल्ली में रहते हैं, वह एक माने में खुशनसीब हैं, लेकिन दिल्ली शहर हिन्दुस्तान नहीं है, हिन्दुस्तान की राजधानी है। हिन्दुस्तान तो लाखों गांव का है और जब तक वह लाखों गांव हिंदुस्तान के नहीं उठते, नहीं जागते, नहीं आगे बढ़ते, तो दिल्ली और बंबई और कलकत्ता और मद्रास हिन्दुस्तान को नहीं आगे ले जायेंगे। इसलिए हमेशा हमें अपने सामने यह लाखों गांवों को रखना है, किस तरह से, वह बढ़ें, किस तरह से बढ़ेंगे अपनी कोशिश से, अपनी हिम्मत से, अपने ऊपर भरोसा करके।

नरेशन : प्रश्न यह है कि अपने पर भरोसा करके लोग करें क्या? सन् 51 की पंद्रह अगस्त को श्री नेहरू ने सुझाव दिया था—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 51-1]

कई हमारे प्रदेशों में प्रांतों में, खासकर देहातों में हमने प्रोग्राम बनाया कि लोग अपनी मेहनत से सड़कें बनाएं, सड़के बहुत कम हैं, आप जानते हैं देहातों में, मकान बनाए, पचायत घर बनाएं, कहीं-कही छोटी-छोटी नहरें खोदें, कही-कही छोटे स्कूल, विद्यालय बनाएं।

नरेशन : लेकिन आज भी कुछ लोग बिना मेहनत किए मुनाफ़ा कमाने के लिए समस्याएं उत्पन्न करने से बाज नही आते। उसी ओर संकेत करते हुए पंद्रह अगस्त, 1950 को हमारे नेता ने दुखपूर्ण स्वर में कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 50-4]

और दूसरी परेशानी की बात यह है कि हमारे मुल्क में काफ़ी लोग ऐसे है जो अब तक पैसा बनाने की कोशिश करते है दूसरे की मुसीबत से। जो चाहे वो व्यापारी हों, चाहे दूकानदार हों या और हों, खुदगर्जी मे जमा करते है खाने का सामान ताकि ज्यादा दाम मिले, या कभी साल दो साल उन्हे जरूरत हो, तो उसको काम में ला सके सोचें आप, यह किस किस्म की चीजे है, जोकि औरों की मुसीबत से फायदा उठाए और पैसा बनाए। किस तरह की चीज है? किस तरह से आप और हम इस बात को बरदाश्त कर सकते है?

नरेशन : सरकारी कर्मचारियों का भी दायित्व कुछ कम नही है, आज़ादी की दूसरी वर्षगांठ पर ही पंडित जी ने आग्रह किया था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 48-6]

वो अपने काम को एक सच्चाई से, ईमानदारी से और जिम्मेदारी से करे और बगैर किसी की तरफदारी किए, क्योंकि जहां कोई अफसर या जिम्मेदार शख्स तरफदारी करता है, तो वो अपनी जगह के काबिल नही रहता।

उ : स्वाधीनता के बाद श्री नेहरू के नेतृत्व में देश ने बहुमुखी प्रगति की।

स्वर : शिक्षा के क्षेत्र में जहां 1947 के पहले साक्षरता लगभग 15 प्रतिशत थी, वह बढ़कर 24 प्रतिशत हो गई।

स्वर : चालू मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति आय 249 रुपये से बढ़कर 329 रुपये हो गई।

स्वर : राष्ट्रीय आय 8650 करोड़ रुपये से बढ़कर 14630 करोड़ तक जा पहुंची।

स्वर : स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रति हजार व्यक्ति में जन्म दर 40.7 हो गयी लेकिन मृत्यु दर 27.4 से घटकर 21.6 हो गयी।

स्वर : बिजली और सिंचाई के क्षेत्र में तो स्वाधीनता प्राप्ति के बाद बहुत ही उल्लेखनीय प्रगति हुई।

स्वर : देश के अधिकांश हिस्सों में जमींदारी, महालवारी और रैयतवारी जैसी बिचौलियों की प्रथा को समाप्त कर दिया गया।

स्वर : जहां तक उद्योगों का सवाल है, 1948 में जबकि कारखानों में 483 करोड़ रुपये की उत्पादक पूंजी लगी हुई थी, 1962 के अंत में लिमिटेड कम्पनियों की उत्पादक पूंजी 1997.7 करोड़ रुपये तक जा पहुंची।

नरेशन : शुरू में कई वर्षों तक शरणार्थियों को बसाने की विकराल समस्या देश की प्रगति में बाधक बनी रही। बापू का हवाला देते हुए हमारे जननायक ने सन् 1949 में विश्वास प्रकट किया था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 49-1]

माना कि अभी तक हमारे लाखों भाई और बहिन है शरणार्थी, वह ठीक-ठीक तौर से जमाए नहीं गए, बसाए नहीं गए हैं। सवाल, इनको हमें संभालना है और हल करना है, लेकिन वह जो पुरानी ताकत थी जो हमें आगे ले जाती थी और कभी-कभी एक मुट्ठी-भर आदमियों को आगे ले जाती थी और वह मुट्ठी-भर आदमी मुल्क, सारे मुल्क पर असर करते थे और मुल्क की किस्मत को बदलते थे। तो फिर क्या वह आजाद हिन्दुस्तान में वह ताकत कम है जो पहले थी और जिसने इसमुल्क में इन्कलाब

किए और उलट-पलट इतनी की है। मैं तो समझता हूं कि वह ताकत है और वह ताकत पहले से भी ज्यादा है।

नरेशन : इस तरह की समस्याएं हल्के-हल्के हल होती गईं, फिर भी कुछ समस्याओं का सिलसिला बना ही रहा। भारत के कुछ हिस्से अब भी विदेशी हुकूमत के कब्जे में थे, जिन्हें मुक्त कराने का नैतिक दायित्व हमारा था। लेकिन, हम सभी देशों के साथ शांति और सद्भाव, पंचशील और सहअस्तित्व के आधार पर संबंध रखना चाहते है, जैसा कि विश्वशांति के रहनुमा पंडित जी ने पन्द्रह अगस्त 1955 को कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 55-1]

हमने हरेक मुल्क को तरफ दोस्ती की निगाह से देखा और दोस्ती का हाथ बढ़ाया। हां, कुछ सवाल इधर-उधर हुए पेचीदा सवाल, जो कि कुछ रास्ते में आए लेकिन वह भी कोई वजह नहीं है कि हम किसी मुल्क से अपनी दोस्ती कम करें क्योंकि आखिर में यही एक दुनिया का ठीक रास्ता है और खासकर जिस रास्ते पर हम चल रहे है। हमारे पड़ोसी देश हैं, उनके साथ भी हम दोस्ती और करीब का सहयोग करना चाहते है।

नरेशन : भारत जो प्राचीन काल से शांति का समर्थक और मानवता का संरक्षक रहा है। संसार की रक्षा के लिए पंचशील की अपेक्षा पर प्रकाश डालते हुए शांतिदूत श्री नेहरू ने सन् 56 की पंद्रह अगस्त को कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज़ 1956-1]

हिन्दुस्तान से दो लफ्ज निकले—आज नहीं हज़ारों बरस हुए—लेकिन इस जमाने में उन्होंने एक नये माने पकड़े और वो दुनिया में फैले। पंचशील नाम है उनका। किस तरह से मुल्कों में आपस में बरताव हो, एक-दूसरे का नाता और रिश्ता क्या हो? इसके पीछे पुरानी बातें हैं, और नयी बातें है और ये विचार हल्के-हल्के फैले हैं, और बहुत सारे मुल्कों ने उनको तसलीम किया, क्योंकि आज-

कल की दुनिया में कोई चारा नहीं सिर्फ दो रास्ते हैं—
एक लड़ाई का और तबाही का, और दूसरा अमन का,
और पंचशील का। और कोई तीसरा रास्ता नहीं है।

नरेशन : जब स्वेज संकट उपस्थित हुआ, हमारे नेता ने सन् 1956 को पंद्रह अगस्त को सम्बद्ध देशों से आग्रह किया—

[कट श्री नेहरू की आवाज 56-2]

मैं उम्मीद करता हूं कि इस वक्त जो दुनिया के सामने इस स्वेज-कैनाल के मामले में एक बड़े अन्देशे पैदा हुए हैं, जिसके लिए कल लंदन में एक सम्मेलन एक कांफ्रेंस होने वाली है। मैं उम्मीद करता हू कि कोई न कोई रास्ते निकलेंगे अमन से इस बात को तय करने के।

नरेशन : दरअसल श्री नेहरू संसार के हर देश को प्यार करते थे और घातक से घातक समस्या को भी वे शांति और सद्भाव से हल कर लेना चाहते थे। बारम्बार उन्होंने पड़ोसी पाकिस्तान से अपील की, सन् 1951 की पंद्रह अगस्त को भी—

[कट श्री नेहरू की आवाज 51-3]

मैं तो हैरान होता हूं जब मैं सोचता हूं कि कैसे हमारी ताकत जाया हो रही है इस तरह से और किस तरह गलत रास्ते पर पाकिस्तान अक्सर चलता है और ताकत जाया होती है। इसलिए मैं बहुत सफाई से आपसे इस वक्त कह रहा हूं और मैं उम्मीद करता हूं कि मेरी आवाज पाकिस्तान के लोगों तक जाएगी और दुनिया भी सुनेगी, कि हमारा पक्का असूल यह है और हमारी पूरी कोशिश यह है कि हम अमन से रहें, हम पाकिस्तान से अमन से रहें और हम पाकिस्तान के लोगों से दोस्ती करें।

नरेशन : शांति, सद्भाव और सह-अस्तित्व जैसे गुणों की रक्षा के लिए भी शक्ति और साहस की जरूरत होती है, जैसा कि पिछले साल अपने अंतिम 15 अगस्त के भाषण में ज्योतिपुरुष जवाहर ने कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 63-1]

हमने अपने को एक अलमबरदार बनाया, अमन का, शांति का, दुनिया में शोहरत हुई हिंदुस्तान शांति के लिए है, ठीक बात थी। हम शांति के लिए थे, और अब भी हैं लेकिन शांति के साथ कमज़ोरी नहीं चलती है, शांति के साथ गफलत नहीं चलती है, शांति के साथ मेहनत चलती है और शक्ति चलती है तब उसकी हिफाजत हम कर सकते है और हमारी आवाज़ की कोई दुक्कत हो दुनिया में।

नरेशन : यह बात श्री नेहरू ने चीनी हमले के सम्बन्ध में कही थी, जिस हमले को वरदान बताते हुए जननायक ने कहा था—

[कट श्री नेहरू की आवाज 63-2]

मुझे याद है जब भी और आप तो जानते ही है कि किस तरह से लोगों ने खास और हमारी आम जनता ने उस समय महीनों तक, अपनी हर चीज़ जो उनके पास थी देने के लिए तैयार हो गए, पैसे दिए, हमारे कोष में सोना-चांदी सब कुछ दिया और सबसे ज्यादा उन्होंने दिया, जिनके पास सबसे कम था। और यकायक हिन्दुस्तान भर में (तालियां) हिन्दुस्तान भर में, एक हवा फैली जिसमें लोग अपने आपसी झगड़े भूल गए थे, उनको पीछे कर दिया था, छुपा दिया था, दबा दिया था और सब लोग महसूस करते थे कि जब हमारा देश खतरे में है तो उसका अव्वल काम हमारा उसका सामना करने का है, उसकी मदद करना है और खतरे का सामना करना है।

नरेशन : और उस साल यानी सन् 1963 की पंद्रह अगस्त को लाल किले के प्राचीर से उन्होंने अंत में कहा था—

बस फिर से मैं आपको आज सोलहवीं सालगिरह के लिए मुबारिक देता हूं और उम्मीद करता हूं कि आप इस दिन को याद करेंगे। अभी तो आजाद हिन्द एक बच्चा है, सोलह बरस की उम्र क्या है एक मुल्क की, यों तो पुराना देश है हमारा, लेकिन आजाद हिन्द का मैं कहता हूं।

ज्यों-ज्यों बढ़े, इसकी ताकत बढ़े, इसका चरित्र अच्छा हो, मजबूती हो, सिर ऊंचा हो और सिर ऊंचा करके आगे बढ़े दुनिया में। इन बातों को आप याद रखिए और खासकर कि हमारे देश में जो लोग रहते हैं, जिस हिस्से में रहते हैं जो उनका धर्म हो, मजहब हो, सब हमारे भाई-बहिन हैं और सभी को साथ मिलकर हमें चलना है, जो इस बात को भूल जाता है वह देश की सेवा नहीं करता है। फिर से आपको मुबारिक हो। जयहिन्द।

नरेशन : प्राचीर से नहीं, देव-पथ से गूंजने वाला वह अनश्वर स्वर आज भी भारत की हवा पर तैर रहा है, उसकी मिट्टी से फूट रहा है, कण-कण को स्वाधीनता की सुरभि बनकर चारों ओर परिव्याप्त हो रहा है। वह स्वर ही नहीं, इतिहास का मंत्र भी है जो अनन्तकाल तक हमारे मन-प्राणों को उद्वेलित-अनुप्रेरित करता रहेगा। स्वर शाश्वत है, सार्वभौम है,—अनश्वर है।

[संगीत]

जननायक जवाहरलाल नेहरू के पंद्रह अगस्त के भाषणों पर आधारित कार्यक्रम—'स्वाधीनता का स्वर' आकाशवाणी से प्रसारित किया गया।

ज्योतिचरण

ज्योतिचरण

(रेडियो रूपक)

[संगीत]

वाचक : एक व्यक्तित्व ! जिसमें से राष्ट्रीयता की शतसहस्र किरणें फूट रही हैं।···

[संगीत उभर कर पार्श्व में चलता रहता है]

वाचक : मैं चाहता हूं, और मन से चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद···

[संगीत उभरता है और पार्श्व में चलता है]

वाचक : मेरी अस्थियों में से मुट्ठी-भर इलाहाबाद की गंगा में डाल दी जाएं।

[संगीत से मौसम के बदलने, विविध रंगों और पौराणिक कहानियों के उभरकर तिरोहित होने और उनमें से हिमालय के हिमशिखरों और मैदानों के चित्रित होने का प्रभाव प्रकट होता है]

वाचक : मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिन्दुस्तानी [illegible] और बहनों ने इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत [illegible] चाहे मैं जितना कुछ करूं, वह उसके [illegible] हिस्से का बदला नहीं हो सकता।

[संगीत उभरकर जवाहरलाल [illegible] चाचा नेहरू जिन्दाबाद के [illegible] जाता है]

वाचक : ज्योतिपुरुष जवाहरलाल [illegible] आदर्श की अभिव्यक्ति है। [illegible] लिए जवाहरलाल ने जीवन को ही अर्पित कर दिया [illegible] जिसके बदले देश ने [illegible]

और उमंगों का प्रज्वलित प्रतीक मान लिया। कैसा था 1889 का पावन पुनीत दिवस चौदह नवम्बर, जिस दिन प्राचीन प्रयाग के अनजाने मीरगंज मुहल्ले में साध्वी स्वरूपरानी मां की कोख को उजागर करने के लिए नन्हे जवाहर का जन्म हुआ! और कैसी थी वह मां, जिनके प्रेम की परिधि पुत्र के विराट जीवन को ज्योतित किए रही—

श्री नेहरू · (यथार्थ स्वर) उनसे मुझे प्रेम था, उनका आदर था और उनसे मैंने बहुत कहानियां सुनी थीं। हमारी पुरानी यानी रामायण, महाभारत की कहानिया जैसे बच्चे सुना करते हैं।

वाचक : बचपन में जो कुछ प्राप्त हुआ, घर से और घर मे ही प्राप्त हुआ।

श्री नेहरू · (यथार्थ स्वर) सब पढ़ाई घर में ही होती थी उस ज़माने में। स्कूल तो मैं करीब-करीब गया ही नही हिन्दुस्तान मे। कुछ दिन के लिए शायद एक कॉन्वेन्ट मे छोटा बच्चा था तब गया था। ज्यादातर घर पर ही पढ़ा और घर में ही पढ़ाने वाले रहते थे और आते थे। बाद मे जब विलायत गया तो वहाँ स्कूल गया था मैं।

वाचक : स्नेहमयी मा ने आस्था का आलोक दिया और प्रतापी पिता के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने इच्छाशक्ति और तर्क संगत संकल्प। सम्पन्न पिता मोतीलाल का इकलौता पुत्र नन्हे जवाहर सुखी-समृद्ध और भरे-पूरे परिवार के बीच भी एकात-शांत जीवन जीने का संस्कार समेटता रहा, न कोई हमउम्र न कोई हमजोली, न कोई सहयात्री न तो सहपाठी। जिज्ञासा या जिल्लत की वेदना उठने पर मात्र मुंशी मुबारक अली सहानुभूति का स्वर्गीय सुख लुटाने को सन्नद्ध रहते और एकाकीपन को भरने के लिए जवाहरलाल को अपने प्रिय ट्यूटर एफ० टी० ब्रुक्स का सहारा था, जिनकी प्रेरणा से उनमें धर्म-ग्रंथों के अध्ययन और पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म विवेचन करने की

इच्छा जगी।

श्री नेहरू: (यथार्थ स्वर) जहां तक हिन्दू धर्म का ताल्लुक है एक दिमागी असर मेरे पर उपनिषदों का हुआ। बाद में जरा बढ़कर हुआ। यह मैं नहीं कहता कि मैं उनको पूरा-पूरा समझता हूं, लेकिन गीता-उपनिषद का असर मेरे ऊपर जरूर है। उनको पढ़ने से मेरे ऊपर एक असर होता है। ज्यादा मैं नहीं कह सकता। दूसरे, मुझ पर बचपन से गौतम बुद्ध की कहानी ने बड़ा असर किया है।

वाचक: कैसा संयोग कि दो विपरीत गुणों का समन्वय इस एक व्यक्तित्व में संभव हो सका, व्यक्तिगत पक्ष अन्तरमुखी लेकिन, राष्ट्रीय पक्ष बहिर्मुखी-भास्वर। आनन्द भवन का प्रभाव विलायत जाकर भी विलीन नहीं हो सका। पुस्तकें पढ़ने की रुचि उद्दाम लेकिन, कुछ बोलना हो··· तो मौन ही सम्बल!

श्री नेहरू: (यथार्थ स्वर) वहां कैम्ब्रिज में हिन्दुस्तानियों की एक इंडियन मजलिस कहलाती थी, उसमें कभी बोल भी दूं थोड़ा-सा लेकिन ज्यादा नहीं। बोलने वालों में मैं नहीं था। यूनिवर्सिटी के हमारे कालेज का एक कायदा था कि जो नहीं बोले पूरे एक टर्म (सत्र) में उसे जुर्माना देना पड़ता था। कुल 2-3 रुपये जुर्माना! दो-तीन वर्ष तक मैंने जुर्माना दिया।

वाचक: बचपन के मौन के लिए इस महापुरुष को जीवन-भर जुर्माना अदा करते रहना पड़ा। बाद में चलकर, जन-जन में जागृति पैदा करने के लिए, इन्हें इतना बोलना पड़ा जितना कि शायद ही किसी राष्ट्रनेता को बोलना पड़ा हो। और इन्हें बोलने की प्रेरणा मिली उन किसानों से, जो मूक थे, लेकिन, वास्तव में वे ही भारत थे।

श्री नेहरू: (यथार्थ स्वर) हिन्दुस्तान आके और यहां 2-3 बरस बाद बोलने का सवाल मेरे सामने उठा और वह भी किसानों में और किसानों में मुझे कोई झिझक नहीं थी, बोलने की कोई शरम नहीं थी कि कोई पकड़ लेगा।

और उमंगों का प्रज्वलित प्रतीक मान लिया। कैसा था 1889 का पावन पुनीत दिवस चौदह नवम्बर, जिस दिन प्राचीन प्रयाग के अनजाने मीरगंज मुहल्ले में साध्वी स्वरूपरानी मां की कोख को उजागर करने के लिए नन्हे जवाहर का जन्म हुआ ! और कैसी थी वह मां, जिनके प्रेम की परिधि पुत्र के विराट जीवन को ज्योतित किए रही—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) उनसे मुझे प्रेम था, उनका आदर था और उनसे मैंने बहुत कहानियां सुनी थी। हमारी पुरानी यानी रामायण, महाभारत की कहानियां जैसे बच्चे सुना करते हैं।

वाचक : बचपन में जो कुछ प्राप्त हुआ, घर से और घर में ही प्राप्त हुआ।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) सब पढ़ाई घर में ही होती थी उस जमाने में। स्कूल तो मैं करीब-करीब गया ही नहीं हिन्दुस्तान में। कुछ दिन के लिए शायद एक कॉन्वेन्ट में छोटा बच्चा था तब गया था। ज्यादातर घर पर ही पढ़ा और घर में ही पढ़ाने वाले रहते थे और आते थे। बाद में जब विलायत गया तो वहां स्कूल गया था मैं।

वाचक : स्नेहमयी मां ने आस्था का आलोक दिया और प्रतापी पिता के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने इच्छाशक्ति और तर्क सगत संकल्प। सम्पन्न पिता मोतीलाल का इकलौता पुत्र नन्हे जवाहर सुखी-समृद्ध और भरे-पूरे परिवार के बीच भी एकांत-शांत जीवन जीने का सस्कार समेटता रहा, न कोई हमउम्र न कोई हमजोली, न कोई सहयात्री न तो सहपाठी। जिज्ञासा या जिल्लत की वेदना उठने पर मात्र मुंशी मुबारक अली सहानुभूति का स्वर्गीय सुख लुटाने को सन्नद्ध रहते और एकाकीपन को भरने के लिए जवाहरलाल को अपने प्रिय ट्यूटर एफ० टी० ब्रूक्स का सहारा था, जिनकी प्रेरणा से उनमें धर्म-ग्रंथों के अध्ययन और पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म विवेचन करने की

इच्छा जगी।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) जहां तक हिन्दू धर्म का ताल्लुक है एक दिमागी असर मेरे पर उपनिषदों का हुआ। बाद में जरा बढ़कर हुआ। यह मैं नहीं कहता कि मैं उनको पूरा-पूरा समझता हूं, लेकिन गीता-उपनिषद का असर मेरे ऊपर जरूर है। उनको पढ़ने से मेरे ऊपर एक असर होता है। ज्यादा मैं नहीं कह सकता। दूसरे, मुझ पर बचपन से गौतम बुद्ध की कहानी ने बड़ा असर किया है।

वाचक : कैसा संयोग कि दो विपरीत गुणों का समन्वय इस एक व्यक्तित्व में संभव हो सका, व्यक्तिगत पक्ष अन्तरमुखी लेकिन, राष्ट्रीय पक्ष बहिर्मुखी-भास्वर। आनन्द भवन का प्रभाव विलायत जाकर भी विलीन नहीं हो सका। पुस्तकें पढ़ने की रुचि उद्दाम लेकिन, कुछ बोलना हो··· तो मौन ही सम्बल!

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) वहां कैम्ब्रिज में हिन्दुस्तानियों की एक इंडियन मजलिस कहलाती थी, उसमें कभी बोल भी दू थोड़ा-सा लेकिन ज्यादा नहीं। बोलने वालों में मैं नहीं था। यूनिवर्सिटी के हमारे कालेज का एक कायदा था कि जो नहीं बोले पूरे एक टर्म (सत्र) मे उसे जुर्माना देना पडता था। कुल 2-3 रुपये जुर्माना! दो-तीन वर्ष तक मैंने जुर्माना दिया।

वाचक : बचपन के मौन के लिए इस महापुरुष को जीवन-भर जुर्माना अदा करते रहना पड़ा। बाद में चलकर, जन-जन में जागृति पैदा करने के लिए, इन्हें इतना बोलना पड़ा जितना कि शायद ही किसी राष्ट्रनेता को बोलना पड़ा हो। और इन्हें बोलने की प्रेरणा मिली उन किसानों से, जो मूक थे, लेकिन, वास्तव में वे ही भारत थे।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) हिन्दुस्तान आके और यहां 2-3 बरस बाद बोलने का सवाल मेरे सामने उठा और वह भी किसानों में और किसानों में मुझे कोई झिझक नहीं थी, बोलने को कोई शरम नहीं थी कि कोई पकड़ लेगा। (हंसी)

वाचक : जो सुना जाय या देखा जाय, वही सत्य नहीं होता। जवाहरलाल जानते थे, बल्कि मानते भी थे कि किसानों के बीच जाकर ही वे पकड़े गए, जनता को जवाहर मिल गया और जवाहर को ज्योति का उत्स ! उन्होंने देखा कि भारत कहां है ? उन्होंने महसूस किया कि मुद्दत से मुसीबत के मारे बेसहारा किसानों की दशा में आमूल परिवर्तन लाए बगैर भारत का भाग्य बदलना असंभव है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि राजनीतिक आजादी के बाद पहला लक्ष्य होना चाहिए—इस गरीबी के मसले को हल करना। यह अनुमति सन् बीस की है। और उसके बाद संघर्ष का जो सिलसिला शुरू हुआ तो सत्ताईस मई, 1964 को जाकर ही सनातन सत्य में समाहित हो सका।

[संगीत]

वाचक : जब बापू शहीद हुए थे, ज्योतिचरण जवाहर ने कहा था कि रोकर श्रद्धांजलि देना उचित नही है, एक ही रास्ता है कि हम संकल्प को अभिव्यक्ति दे, उनके शुरू किए गए काम मे जुट जाएं। ऐसा भारत के निर्माता नेहरू ने कहा था युगपुरुष गाधी के बारे में—ऐसा कहकर उन्होने सकेत दिया था अपने बारे में, क्योंकि वे भी आसू नही पसद करते थे। वे कर्मयोगी थे।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मैं राजनीति का आदमी हूं मैं उसे अच्छी चीज समझता हूं। मैं दुनिया को बदलना चाहता हूं, मैं हिन्दुस्तान को बदलना चाहता हूं। मैं कोठरी में बैठ के जपना नहीं चाहता माला। यह मेरे काबू के बाहर की बात है। (हंसी) तो अगर मैं पद छोड़ दू तो मैं दूसरे ढंग से उसी काम को करूंगा।

वाचक : ऐसी बात नही कि सन् 47 में प्रधानमंत्री बनने के बाद वे इस अधिकार और विश्वास से बोलने लगे थे। सन् 1915 से ही उनमें यह संकल्प और आत्मविश्वास पैदा हो गया था। उसी साल वे मालवीय जी द्वारा स्थापित

किसान सभा में शामिल हुए और उसी साल दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में उनकी भेंट गांधी जी से हुई, जिस गांधी को वे महात्मा और बापू कहते थे—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मेरी राय में जाहिर है वो नेता थे और मैं उनका अनुयायी था। गुरु-शिष्य का तो कहना शायद सही न हो, न पिता-पुत्र का पूरा सही हो। लेकिन इन सब बातों की थोड़ी झलक आ जाती है। हरेक का जरा-जरा असर होता है, बिल्कुल सोलह आने तो नहीं होतीं ये बातें। (हल्की हंसी)

वाचक : असर हुआ दिल पर और दिमाग पर। तन-मन में एक बार तो चेतना की लहर दौड़ी सो दौड़ती ही रही। बैठकों, सभाओं, जुलूसों और टोलियों का तूफान उठ खड़ा हुआ। मोटर से, गाड़ी से, बैलगाड़ी से, ऊंट पर, घोड़े पर, यहां तक कि पैदल भी निकल पड़े--दिन-रात लोगों में निर्भयता का दीप जलाते हुए घूमने लगे। उन्होंने माना कि बुराई फैलती है यदि हम उसे बर्दाश्त करते है, भयंकर से भयंकर निरकुश और क्रूर शासन भी तभी टिकता है जब उसे जनसहयोग मिलता है। इसलिए,उन्होने बापू के असहयोग आन्दोलन को सही समझा और लोगों को जगाने के लिए निकल पड़े। पिता को पुत्र का इस प्रकार बेहाल घूमना पसंद नहीं आया। उन्होंने पुत्र को सवैधानिक मार्ग अपनाने की सलाह दी। लेकिन, पुत्र को सिद्धांत नहीं, कर्तव्य प्रिय था। वे सहज उत्साह से किसान आंदोलन में कूद पड़े।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) कांग्रेस के मेरे करीब-करीब बिल्कुल शुरू जमाने में तो नही, लेकिन उसके बाद पांच-सात बरस में तो उत्तर प्रदेश में देहात के काम में बहुत फंस गया था, खासकर अवध के जिलों में, रायबरेली, फैजाबाद में और फिर इसके अलावा…

चौधरी : यह तो सन् बीस की बात है, सन् बीस के आसपास।

श्री नेहरू : जी हां।

चौधरी : शुरू की बात है।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) जी हां, उसी का कह रहा हूं मैं। कांग्रेस में जाब्ते से मैं सन् बारह से था ना। उस वक्त सन् बीस-इक्कीस में वहां जाने लगा, फंस गया और फंसता ही गया उसमें।

वाचक : पंडित जी प्रबुद्ध व्यक्ति थे। अपनी आत्मचेतना के निर्देश के विरुद्ध जाना उन्होंने कभी पसन्द नहीं किया। गांव के गरीब और असहाय किसानों को देखकर, नंगे, भूखे, कुचले और बेहाल भारत की तस्वीर उनके सामने आ खड़ी हुई और वे लज्जा और दुख में डूब गए। और तब से वे उनके दुख-दर्द दूर करने में ही दिन-रात लगे रहे—घर-परिवार तो दूर, वे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू के गिरते हुए स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रख सके—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) कभी रखी, कभी नहीं। याने मेरे मन में बहुत सारे सवाल थे। उनकी बीमारी की बात छोड़िए। मैं तो देश-भर में दौड़-धूप करता था। अपने घर का ख्याल तो मुझे था नहीं। बहुत अधिक भरा हुआ था और विचारों से। कुछ जुनून-सा था। मेरी लड़की इन्दिरा छोटी थी। 2-3 बरस तो मेरे ऐसे गुजरे कि मैं देख भी नहीं पाता था कि मेरे इधर-उधर क्या हो रहा है।

वाचक : जवाहर के साथ समय का आह्वान था। वे विश्वास के साथ स्वाधीनता-संग्राम में साहसी सेनानी बनकर जूझते रहे। जेल उनका दूसरा घर बन गया। उनकी बीमार पत्नी, वृद्धा मां, बहन—यहां तक कि इच्छा-शक्ति के साकार स्वरूप प्रतापी पिता भी सक्रिय आन्दोलन में कूद पड़े। बिस्मिल इलाहाबादी के शब्दों में—

"अपनी कुरबानी से है मशहूर नेहरू खानदान,
शमा-महफिल एक है, ये घर का घर परवाना है।"

वाचक : जवाहर की ज्योति ने देश का ही नहीं, परिवार का मार्ग भी निर्धारित कर दिया, हालांकि अपने पिता के बारे में उनका कथन है—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) वे एक निहायत मजबूत इरादे के आदमी थे, जो किसी के कहने-सुनने में नहीं आते थे और जिन्होंने बहुत काफी अपने दिल में कुश्ती लड़ी—पहले इसके कि गांधी के साथ हुए हों। वे आसानी से वह जानेवाले आदमी नहीं थे। जाहिर है कि एक बहुत स्ट्रांग विलपावर(संकल्प-बल) वाले थे। यों बहुत सारे वाकयात का असर होता है। और फिर ऐसे आदमी भी नहीं थे कि एक बात करे तो फिर कहीं बीच में बैठ रहे। वे पूरी तरह से कूदना चाहते थे।

वाचक : पिता ने जमीन पर सो-सो कर देखा कि पुत्र को जेल में कैसा जीवन बिताना पड़ेगा। इतना ही नहीं, असहयोग आंदोलन में शामिल होकर वे जेल भी गये। फिर तो पिता-पुत्र जन-आन्दोलन के प्रतीक ही बन गये। जवाहरलाल पर ही नहीं, माता स्वरूपरानी पर भी पुलिस ने डंडे बरसाये, कमला नेहरू अपनी घातक बीमारी के बावजूद जेल की सजा भुगतती रही, धीरे-धीरे उनकी दशा शोचनीय होती गयी। पहली बार सन् 26 में जवाहरलाल अपनी बीमार पत्नी को लेकर इलाज के लिए स्विट्ज़रलैण्ड गए। लेकिन, दूसरी बार वे अपनी पत्नी का साथ न दे सके। श्री रामनारायण चौधरी के साथ बातचीत में इस हृदयद्रावक घटना का जिक्र करते हुए स्थितप्रज्ञ नेहरू ने सन् 58 में कहा था—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मैं भी उनके साथ रहा। मैं अपने स्वास्थ्य के लिए कभी एक दिन के लिए भी अस्पताल में नहीं रहा हूं, एक दिन या एक रात भी। लेकिन अस्पताल में रहा काफी कमलाजी की वजह से। और (हंसी) नर्सिंग होम वगैरा में पौने दो बरस रहा। वहां से वापस तब आया जब वे अच्छी हो गई थीं।

चौधरी : अच्छा।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) दुबारा जब स्विट्ज़रलैंड वे गई थीं तब तो मैं जेल में था।

चौधरी : अच्छा ।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मैं अल्मोड़ा जेल में था और वे भवाली सैनिटोरियम में थीं । उनके जाने का निश्चय हुआ तो मैं बुलाया गया उनसे रुख्सत होने । तो मुझे वहां ले आए थे जेल से और जब वो भवाली से आने लगीं रुख्सत होकर तो फिर भेज दिया गया । फिर उसके तीन-चार महीने बाद तार आया कि उनकी तबीयत खराब है ।

चौधरी : अच्छा !

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) उस पर गवर्नमेंट ने मुझे छोड़ दिया । यूं तो कुछ दिन बाद, चंद महीने बाद में छूटने ही वाला था । और मैं भवाली से काठ गोदाम होता हुआ सीधा इलाहाबाद गया । और जिस रोज इलाहाबाद पहुंचा, सुबह पहुचा शायद मैं, उसी रोज दोपहर को हवाई जहाज से चला गया । और पहुचा स्विट्ज़रलेंड । वो स्विट्ज़रलेंड में नही थी । उस वक्त जर्मनी के एक हिस्से में थीं और फिर उनके साथ मैं चार-पाच महीने वही रहा । ज्यादातर वो अस्पताल में थी, मैं बाहर रहता था । लेकिन मिलता-जुलता था । फिर मैं आ रहा था वापस । निश्चय हो गया था कि वापस जाऊं । कांग्रेस का यहां प्रेसीडेण्ट चुना गया था ।

चौधरी : अच्छा !

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) लखनऊ कांग्रेस में । सब निश्चय हो गया था हवाई जहाज का तारीख टिकट वगैरा । फिर डाक्टर ने मुझसे कहा, अभी तुम मत जाओ, ठहर जाओ । मैंने मुल्तवी कर दिया जाना और उसके कोई एक सप्ताह के अंदर उनका देहान्त हो गया ।

चौधरी : आपके रहते-रहते ?

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मेरे रहते-रहते । खैर, इसके बाद पांच-सात रोज वहा रहकर चला आया था वापस । तो एक माने में स्विट्ज़रलैंड मैंने छोड़ा नही था । लेकिन छोड़ने का इरादा किया था । इरादा किया उनके मशविरे से । उनसे

बातचीत करके कि हां, तुम जाओ। एक माने में तबीयत अच्छी मालूम हो रही थी। ऐसा होता है ऐसी बीमारियां में।

चौधरी : जी हां।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) लेकिन डाक्टर ने कहा कि तुम ठहर जाते तो अच्छा था, मैं ठहर गया।

वाचक : ठहर गए, जैसे खामोशी ठहर जाती है, रह गए जैसे किनारा रह जाता है। जन समुद्र के कोलाहलपूर्ण ज्वार-भाटा के बीच बसने वाला जवाहर अकेला हो गया, अकेला तो वह शुरू से था और अकेला वह अंत तक रहा 27 मई की सुबह तक। लोग कहते थे, लोग आज भी कहते हैं।

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) शिकायत आम तौर से होती है मेरे निस्वत कि मेरा कोई करीब का दोस्त दुनिया में नहीं है। यह शिकायत होती है! और बहुत कुछ सही है। दोस्त भी है, जान-पहचान के बहुत है, लेकिन जिनसे मैं दिल खोल के बातें करूं, सचमुच में कम हैं, क्योंकि मेरी दोस्ती के हल्के अलग हैं। कुछ हल्कों में करीब के है, लेकिन हर हल्के में कोई नहीं।

वाचक : महान की छाया में से बचपन गुजरा, विराट की छाया में से युवावस्था और राह के दोनों ओर विशाल जनसमुदाय की दीवारें। जवाहर शिखरों से शिखरों पर नहीं गया। वह तो तलहटी से चलकर तपती चट्टानों पर से होता हुआ चोटी पर पहुंचा—असंख्य विरोधों के तूफान झेलता हुआ, विवाद के खतरनाक खन्दकों से बचता हुआ। दरअसल, उसने अपना जीवन राह को सौंप दिया था निदान कोई मंजिल नहीं मिली, वह समाज का था, इसलिए किसी व्यक्ति का न हो सका, उसने राष्ट्र को पकड़ा था, इसलिए परिवार को संतोष करना पड़ा। वह अनासक्त था—अकेला नहीं, ऐसे व्यक्तित्व को व्यक्ति भले न समझे, लेकिन जनता समझती थी और उनसे प्रेम करती थी और

पंडित जी इस तथ्य से अपरिचित नहीं थे—अछूते भी नहीं।

नेहरू: (यथार्थ स्वर) आप जानते है कि पिछले पांच-छह हफ्ते से मैंने हिन्दुस्तान के बहुत सारे दौरे किए। दूर-दूर तक गया हूं, बल्कि शायद किसी और का इस अरसे में इतनी जगह जाना आइंदा मुश्किल हो, जितनी जगह मैं पहुचा और खासकर जितने लोगो से कुछ कहने का मौका मिला। मैंने हिसाब लगाया, मैंने नहीं बल्कि मैं हिसाव लगे कि पिछले पांच-छह हफ्ते में जलसों में डेढ़ करोड़ से दो करोड़ तक आदमी को मैंने कुछ कहा है जलसों में आये। जबरदस्त तायदाद है—हिन्दुस्तान की आबादी लम्बी-चौड़ी है, लेकिन काफी हिस्सा उसका हो जाता है। क्योंकि अजीव मैंने एक फिजा पाई मुल्क में, जहां-जहां जाऊ और काफी फिरा हूं मैं, कुछ और भी फिरना है, लेकिन काफी हिमालय से लेके रामेश्वर तक और उधर बर्मा से सरहद से लेकर इधर···। हर जगह एक नयी फिजा पाई मैंने। अब जो मे निकला और फिर से एक संबंध हिन्दुस्तान की जनता से हुआ, तो वो कुछ, मैं नहीं जानता कि मैंने जनता में क्या असर पैदा किया, लेकिन उसने मेरे दिल पर बड़ा जबरदस्त असर पैदा किया और मेरी कुछ हिम्मत बढ़ी, ताकत बढी और एक मैंने महसूस किया कि हम जो अपने दिमागों में बड़े-बडे काम सोचा करते है वो मुश्किल नहीं होनी चाहिए अगर मुल्क में फिजा रहे। क्योंकि जैसे मैंने आपसे कहा चन्द करोड़ हिन्दुस्तान के लोगों से ताल्लुक मेरा हुआ है, पिछले महीने डेढ दो महीने में और कोई हिन्दुस्तान का हिस्सा बाकी नही रहा सिवाय दो-एक जगह जहां मैं पाच-सात दिन मे जाने वाला हूं, जहां मैं नही गया। हिमालय के बर्फ से लेके करीब-करीब लका के पास तक नीचे और इधर आसाम में बर्मा के किनारे तक और चारों तरफ बीच में। तो कुछ मुझे हक हो गया हिन्दुस्तान

के लोगों, जनता जो कुछ कही है उनकी तरफ से। खैर मेरे कहने की खास कोई जरूरत नहीं है क्योंकि शायद उन साहबों ने और आपने भी, जो कुछ थोड़ी-बहुत खबरें आप तक पहुची है, कुछ महसूस किया होगा कि आखिर ये हिन्दुस्तान के मैसेज का जो बड़ा चर्चा होता है यो किधर देखते है और क्या उनकी राय है बुनियादी राय !

वाचक : श्री शिवदत्त उपाध्याय ने जवाहरलाल जी को आकाश चढ़ते देखा है—

श्री उपाध्याय : 24 वर्ष की उम्र में, आज से लगभग इकतालीस वर्ष पहले, मैंने नेहरू परिवार में प्रवेश किया था। पहले के आठ वर्षों में तो, मैं पडित जी के पिता श्री मोतीलाल नेहरू की सेवा करता रहा और बाद में जवाहरलाल जी की। इतने लम्बे अरसे तक उनके साथ रहकर मैंने अनुभव किया, पंडित जी जहां राजनीतिज्ञ और राष्ट्र-निर्माता थे वहां अपने परिवार में, वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई और आदर्श पिता भी थे. तथा जनसाधारण के लिए वे आदर्श मनुष्य थे। पंडितजी के हृदय में अपने माता-पिता की सेवा का भाव भरा था। लेकिन, सदा कार्यव्यस्त रहने के कारण, उन्हें वैसी सेवा का मौका कम मिलता। 1930 में, अपने पिता मोती-लाल जी के साथ, उन्हें जेल में रहना पड़ा। जेल में पिता जी की सेवा करने का उन्हें अवसर मिला। वे अपने पिताजी को सुख-सुविधा का पूरा ख्याल रखते। मोती-लाल जी को जिस चीज की जरूरत होती, उसे वे पहले ही ठीक स्थान पर मौजूद पाते थे। शेव करने के समय शेव का सामान, नहाने के समय—नहाने का सामान, नाश्ते के समय—नाश्ता और पढ़ने के समय— किताबें और दूसरी चीजें। स्वयं पंडित मोतीलाल जी को आश्चर्य होता कि जवाहरलालजी कैसे उनकी रुचि के अनुसार सब इन्तजाम कर देते थे और साथ ही वे अपना खुद का काम भी कर लेते थे। पडितजी देश की नब्ज पहचानते

थे, वे जानते थे कि देश की आत्मा गांवों में वसती है। गांव वालों के प्रति उनके हृदय में असीम प्रेम था। सैकड़ों किसान-मजदूर गांवों से आनन्द भवन आ जाते थे। दूसरे लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, पर पंडितजी उनसे दिल खोलकर मिलते थे। उन्हें वे अपने पढ़ने के कमरे में ले जाते थे, उनसे अपनाने की वातें करते थे। वे उन्हें अपने डायनिंग हाल में ले जाते थे, उनके साथ घुल-मिलकर वैठते थे, खाते थे, वात करते थे। ऐसे थे पंडित जी।

पंडित जी अपने साथ रहने वाले लोगों से भी वहुत स्नेह रखते थे और उनके साथ समानता का वर्ताव करते थे। उनके यहा गांव से आने वाले कई चौकीदार थे, जो वेचारे गांव की वोली वोलते थे। कभी-कभी चौकीदार ही फोन सुन लेता और पडित जी के पास आकर कहता—"सरकार तोहका फोन पर वोलात है।" पंडित जी उसी प्यार भरे लहजे में कहते—"कहो, आइत है।"

पंडित जी का हृदय असीम करुणा से भरा था। कितनी वार वे दुखियों और असहायों के सहारे वने—कौन गिना सकता है? वैसे अपने निजी जीवन मे भी, वे किसी की सहायता इस ढंग से करते थे कि कोई दूसरा उसे न जाने। यदि पडित जी अपने परिवार के किसी सेवक को भी कुछ देते थे, तो इस तरह छिपे-छिपे कि वह अपने को आभार से दवा महसूस न करे। गाधी जी के संवंध में यह कहा जाता है कि उन्हें आदमी की वहुत परख थी और पडित जी के वारे में शिकायत है कि उन्हें आदमी की परख न थी। सच ही यह वात एक हद तक! वहुत से आदमियों को उन्होंने ऊपर उठाने की कोशिश की और उनको हृदय की सारी ममता और स्नेह दिया, लेकिन उनमें से कई ने उनके हृदय पर चोट पहुंचाई। फिर भी पंडित जी जव तक जीते रहे, दूसरों की सहायता उसी तरह से करते रहे।

इस तरह की अनेक वातें हैं जो पंडित जी के जीवन में

देखने-सुनने को मुझे मिली हैं और जिन्हें जानकर लोगों को आश्चर्य होगा कि पंडित जी जैसे व्यक्ति कितने सीधे-सादे और सरल और निश्छल हृदय के थे।

याचक : वे कहां नहीं थे, क्या नहीं थे ? वैज्ञानिकों का सम्मेलन हो या कालिदास जयंती, मंत्रिमण्डल की बैठक हो या क्रिकेट मैच—जननायक जवाहर हर जगह नायक थे—जन की इच्छाओं और उमंगों के, उसके भाव और अभावों के। एक बार जनसहायता के लिए क्रिकेट मैच हुआ और मैच के बाद बैट की नीलामी हुई स्वयं जननायक के हाथों—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) यह एक नीलाम करने का पेशा मेरे लिए नया है (तालो हंसो) तो अगर मेरे तरफ से कोई कमी हो तो मैं चाहता हूं उसे पूरी कर दें। पहला बल्ला यह है जब सन् 48 में दस से चौदह नवम्बर तक पांच दिन यहां दिल्ली में टेस्ट मैच हुई थी, वेस्टइंडीज के साथ। आप में से शायद उसे देखने आए हों बहुत लोग। वेस्ट-इंडीज का एक जबर्दस्त टीम आया था और चार-पाच रोज तक मैच हुई थी यहां टेस्ट मैच। मुझे याद नहीं कि क्या हुआ—वेस्टइंडीज जीते होंगे। (हंसी) बहरसूरत, उन्होंने वेस्टइंडीज की टीम ने और इंडिया की टीम ने मिलकर दस्तखत करके यह बहुत नायाब बल्ला मुझे दिया था और जब से यानि करीब पांच बरस हो गए, मेरे पास है। यह तो पहला है और दूसरा जब आया था एक कामन वैल्थ टीम सन् पचास मे तीन बरस बल्कि साढे तीन बरस हुए, कामन वेल्थ टीम और हिन्दुस्तान की टीम वहां कानपुर में टेस्ट मैच हुई थी उसके साथ। कानपुर में जो टीम थी टेस्ट मैच के दोनो तरफ उन्होने मुझे यह दिया था दस्तखत करके दोनों तरफ के लोगों के। पहले तो वेस्टइंडीज की टीम के जो दस्तखत है उस बल्ले को लेता हूं और आप वह साहबान की आजमाइश करता हूं (हसी) अब तक तो तीन हजार के हो—तीन

हजार से ज्यादा कोई साहब दिल खोलकर कहें (हंसी)

: "वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने" का आदर्श ज्योतिपुरुष ने अपने जीवन में उतारा था। जन-जन की पीड़ा और वेदना को वे सह नहीं पाते थे और बड़े से बड़े काम को साधारण मानकर करने को कटिबद्ध हो जाते थे। कोई भी पदार्थ उनके लिए बड़ा नहीं था, जन ही सबसे ऊपर था, जननायक जो थे—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) मेरे पास कोई तीन बरस से एक चीज पड़ी है जोकि एक बोझा-सी हो गई है। तीन बरस हुए मैं यूरोप से वापिस आया था बम्बई पहुंचा, तो बम्बई में एक हस्तेइकबालिया कमेटी बनी और उसने एक चीज मुझे दी, बहुत मुहब्बत से, लेकिन मेरे लिए बिल्कुल बेकार है और एक मुसीबत। वो चीज थी एक अशोक का स्तम्भ—सोने का और हीरों का बना हुआ। क्या करे इंसान सोने को और चांदी से, और हीरे से और भी ज्यादा। तो एक इतना बड़ा—एक निहायत वजनी चीज सोने की। कहा जाता है, मुझसे कहा गया था, मालूम नहीं, कि उसकी कीमत अस्सी-नब्बे हजार, लाख रुपये की पड़ा रखा है और मेरे गोदाम में रखा है। और मैं कहां रखूं उसको बताइए आप? तो वह गोदाम में पड़ा है तीन बरस से। तो मेरा इरादा है कि इसी पीड़ित—बाढ से पीड़ित लोगों के सिलसिले में, उसको भी कुछ काम में लाना। सवाल यह है कि कैसे काम में लाया जाय, नीलाम करना तो फिजूल है। कुछ इरादा होता है जरा, अभी तय तो नहीं हुआ कि सबों को मौका दिया जाय उसको हासिल करने का, कुछ टिकट-विकट लगा के, जिसमें बजाय एक लाख के कई लाख की आमदनी हो जाय। मैं तो आपको एक सलाह दे रहा हूं। तालों।

वाचक : बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था—"मेरे उपदेशों को इसलिए मत स्वीकार करो, कि मैंने आज्ञा दी है। मेरी बातों को सुनो, उन्हें तोलो और फिर अपने मन से पूछो

कि तुम्हें क्या करना है।" ज्योतिचरण जवाहरलाल महात्मा बुद्ध के तर्क बल से प्रभावित थे। गांधी के उत्तराधिकारी और अनुयायी होने के बावजूद वे अपने विचार को आचरण के योग्य मानते थे। वे प्राचीन गौरव के गायक होने के साथ-साथ आधुनिक उपादान की उपयोगिता को तर्कसंगत समझते थे—

श्री नेहरू : (यथार्थ स्वर) जहां-जहां मशीनें गई हैं, वहां बेकारी नहीं बढ़ी, बेकारी खत्म हो गई। जाहिर है कि हिन्दुस्तान का नहीं कह रहा हूं मैं। जिस देश में गई है मशीन, मशीन के जाने से इतने नये काम आते हैं। फर्ज करो ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका, जर्मनी। वहां बेकारी नहीं है जो मशीन के मुल्क हैं जोरों के या रूस। इससे कोई मतलब नहीं पूंजीवाद और समाजवाद और साम्यवाद का। मशीनवाद है आजकल की दुनिया का। और जहां वो गई है वहां ये बेरोजगारी खत्म हो गई है हल्के-हल्के। बीच में तकलीफ हुई। तो यह कहना कि मशीन के आने से रोजगार बन्द हो जाता है, एक तो आरजी तौर से सही होता है। दूसरे, बदइतजामी भी उसकी वजह होती है। इसलिए उसको ऐसा समझ के करना चाहिए कि जिससे ये बातें न हों।

वाचक : महान क्रांतिकारी, सहज वक्ता, शांतिदूत और विश्व को नयी दिशा का संकेत देने वाला यह अथक यात्री शांति और संयोजन की खोज में चलता ही रहा है और सोचता रहा है कि अभी कहां ? इस अंधेरी रात में घने जंगलों के बीच से होकर दूर-दूर जाना है। वायदा जो कर रखा है।···दुख झेलते हुए कर्तव्य करने का, इतिहास के दर्शन को समझते हुए कर्तव्य करने का, इतिहास के दर्शन को समझते हुए इतिहास बनाने का हर भारतवासी की आंखों से आंसू पोंछने का।

[संगीत]

वाचक : अपनी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू के देहावसान के बाद

जब वे स्वदेश लौटे तो उन्होंने कहा था कि मैं एक थके बालक की तरह, भारतमाता की गोद में सान्त्वना पाने के लिए लौटा हूं। लेकिन, उन्हें तो उन असंख्य नर-नारियों के बीच ही सांत्वना मिलती थी, जो नर-नारी उनके दर्शन मात्र से ही तृप्त हो जाते थे। वे फिर उनके बीच चले गए, संघर्षरत हो गए और अंग्रेजी सरकार ने फिर उन्हें जेल में बन्द कर दिया, क्योंकि उनकी तमन्ना थी—

"जवानी जिसके कारण जली,
सहे वय भी उसके हित कलेश,
पिघलने दो कण-कण कर हमें
कि सुख से जिये हमारा देश।"

[संगीत]

वाचक : मेरी अस्थियों में से मुट्ठी-भर इलाहाबाद की गंगा में डाल दी जाएं, जिससे कि वह उस महासागर में पहुंचें जो हिन्दुस्तान को घेरे हुए है।

[महासागर की व्यापकता को ध्वनित करने वाला संगीत उभरकर पार्श्व में चलता है।]

वाचक : मेरी भस्म के बाकी हिस्से का क्या किया जाय...

[संगीत उभरकर पार्श्व में चला जाता है।]

वाचक : मैं चाहता हूं कि इसे हवाई जहाज में ऊंचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाए उन खेतों पर जहां भारत के किसान मेहनत करते हैं, ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाए और उसी का अंग बन जाए।

[समापन संगीत] □□

शिवसागर मिश्र का आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में अग्रणी स्थान है। सहज गम्भीरता और शालीनता के प्रतीक मिश्र जी का जीवन अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा है। किशोरावस्था में ही वे स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े। अंग्रेजी सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। उन्हें अपने राज्य से निष्कासन की सजा भी भुगतनी पड़ी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपना लेखकीय जीवन प्रारंभ किया। आकाशवाणी के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए वे साहित्य सृजन में लगे रहे।

उन्होंने सन् 1973 में भारत सरकार के रेल मंत्रालय में राजभाषा निदेशक का पद ग्रहण किया। उनकी अटूट निष्ठा और लगन का ही सुपरिणाम है कि राजभाषा हिंदी के प्रयोग एवं प्रसार में रेल मंत्रालय भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों में अग्रणी है। विलक्षण तेजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी मिश्र जी ने अपनी उच्च कोटि की मेधा और कुशल प्रशासनिक क्षमताओं के बल बूते पर हिंदी को और हिंदी से जुड़े हुए लोगों को रेल जैसे बड़े सरकारी महकमे में प्रतिष्ठित किया। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उन्होंने निदेशक राजभाषा के पद को महिमा-मंडित किया है।

लेखन और प्रचार दोनों दृष्टि से शिवसागर मिश्र ने हिंदी की जो सेवा की है वह अभूतपूर्व है। उन्होंने अपनी समस्त प्रतिभा और शारीरिक ऊर्जा हिंदी की सेवा में खपा दी है। उनके योगदान के लिए हिंदी-जगत् सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची बहुत लंबी है। उनकी अप्रकाशित सात-आठ पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं।